अहिंसा की विजय

(ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक

युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

सम्पादक

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, ब्यावर

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन : पुष्प ६८

☐ अहिंसा की विजय

☐ लेखक
युवाचार्य श्री मधुकर मुनि

☐ सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

☐ प्रकाशक
मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राज०)

☐ प्रथमावृत्ति १२००
वि० स० २०३७ पौष
ई० सन् १९८० दिसम्बर

☐ द्वितीयावृत्ति २२००
वि० सं० २०४० माघ
ई० सन् १९८४ जनवरी

☐ मुद्रक
श्रीचन्द सुराना के लिए
प्राइड प्रिन्टर्स, आगरा

मूल्य : लागत से अल्प : पांच रुपया ५) मात्र

प्रकाशकीय

पाठको की सेवा मे 'अहिंसा की विजय' नामक यह करुणा व दयामूलक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर हिंसा, क्रूरता पर चोट करने वाला ऐतिहासिक उपन्यास प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यत प्रसन्नता है। इस उपन्यास मे बडे ही मार्मिक व हृदय-स्पर्शी ढग से हिंसा के कटु-फल-परिणामो का दिग्दर्शन करा-कर उसकी हेयता बताई है। इसकी शैली आत्मकथाप्रधान है, और कथाक्रम मे रोचकता तथा सीधा हृदय को छू जाने वाली मार्मिकता है।

श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी ने लगभग दो वर्ष पूर्व ही यह उपन्यास तैयार कर लिया था, किंतु अनेक व्यवधानो के कारण इसके प्रकाशन मे बहुत ही विलम्ब हो गया। पुस्तक लगभग १ वर्ष से तो मुद्रणाधीन ही रही है, हमे प्रसन्नता है कि अब यह पाठको के हाथो मे पहुंच रही है।

इसका सपादन सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीचन्द जी सुराना ने किया है। प्राक्कथन प्रसिद्ध विद्वान डा० नरेन्द्र भानावत ने लिखा है। प्रकाशन मे अर्थसहयोगी है श्रीमान मायर चन्द जी चोरडिया। हम आप सभी सहयोगदाताओ का हार्दिक आभार मानते है। आशा है, पाठक इसे चावपूर्वक अपनायेंगे।

भवदीय

मंत्री—मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन

ब्यावर

प्रकाशकीय

(द्वितीय संस्करण)

सत् साहित्य की माग, परिष्कृत जनरुचि का प्रमाण है। जन-मानस का रुझान जब उच्च सांस्कृतिक, धार्मिक तथा नीति-मूलक साहित्य की ओर बढता है तो अवश्य ही यह शुभ सकेत है।

श्रद्धेय युवाचार्य श्री लिखित कथाएँ एवं उपन्यासों की रोच-कता और लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि उनका साहित्य अधिकाधिक पढा जा रहा है और हम उनके पुनःमुद्रण नव संस्करण कर प्रसन्नता एवं गौरव का अनुभव करते है।

'अहिंसा की विजय' का द्वितीय सस्करण पाठको की सेवा मे प्रस्तुत है। आशा है, प्रथम सस्करण की भाति यह भी रुचिपूर्वक सर्वत्र स्वीकारा जायेगा।

—मन्त्री

स्वकथ्य

ससार का अर्थ ही है सतत ससरणशील ! प्रतिपल परिवर्तन-शीलता पदार्थ-पर्याय का सहज गुण है। सूत्रशैली मे इसकी चतु-र्भंगी इस प्रकार होती है—

शुभ से शुभ मे ससरण—परिवर्तन
शुभ से अशुभ में ससरण—परिवर्तन
अशुभ से शुभ मे संसरण—परिवर्तन
अशुभ से अशुभ मे संसरण—परिवर्तन

प्रथम विकल्प सुगति है।
द्वितीय विकल्प अवगति है।
तृतीय विकल्प प्रगति है।
चतुर्थ विकल्प दुर्गति है।

इन सब का मूल कारण है जीव का किया हुआ अपना कर्म ! आचरण ! प्रवृत्ति !

जीव जैसा आचरण/कर्म करता है, वह निश्चित रूप मे उसका फल भी भोगता है। कर्म सिद्धान्त का यह शाश्वत नियम जीव मात्र पर लागू होता है—

कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि

बिना भोगे, कृतकर्म से मुक्ति नही होती। कर्मशास्त्र का यह अटल नियम भारतीय धर्मों ने एक स्वर से स्वीकार किया है, और

इसी की पृष्ठ भूमि पर सदाचार/नैतिकता, धर्म, पुण्य-पाप आदि के नियम-उपनियम वने है। इसी आधार पर उनकी व्याख्या की जाती है, और उनके पालन की प्रेरणा दी जाती है।

जैन, वैदिक, वौद्ध साहित्य मे इस प्रकार के सैकडो उदाहरण मिलते है जिनमे वताया गया है कि अमुक प्राणी ने पूर्वजन्म मे किसी को काँटा चुभाया तो इस जन्म में उसे तीर लगा, या शूली पर चढाया गया, किसी की चोरी की तो दूसरे जन्म मे उसके हाथ ही कट गये। आदि।

महाभारत मे माण्डव्य ऋषि का एक कथानक है कि ऋषि ने पूर्वजन्म मे कुतूहलवश एक तितली के पंख मे कांटा चुभाया था जिसके फलस्वरूप उन्हें अगले जन्म मे शूली पर चढ़कर उस कर्म का फल भोगना पडा।

प्रस्तुत 'अहिंसा की विजय' कथानक इसी सिद्धान्त का एक रोमांचक उदाहरण है। इसमे हिंसा के कटु परिणाम का अत्यन्त हृदयद्रावक वर्णन है। यह वर्णन उपदेशप्रधान नही, किन्तु आत्म-कथाप्रधान है। एक मुर्गा, वह भी आटे का—कृत्रिम, उसकी हिंसा करने के भावो की परिणति, उसके कटुतम फल सात जन्मो तक किस प्रकार भुगतने पडे, कितनी घोर पीडाएँ, यन्त्रणा और मृत्यु तथा त्रास का भोग करना पड़ा, यह रोमाचक वर्णन इस कथानक मे गुम्फित है, जिसे पढ़कर/सुनकर आज भी हृदय मे कँपकपी पैदा हो जाती है, रोगटे खडे हो जाते है।

वालमुनि अभयरुचि की उद्‌वोधक वाणी से क्रूर-हिंसाप्रेमी राजा मारिदत्त का हृदय किस प्रकार परिवर्तित होता है, वलि के लिए एकत्र जलचर, थलचर, नभचर जीवो के हजारो जोडे

प्रबुद्ध होकर अभय कर दिये जाते हैं—यह घटनाचक्र अत्यन्त रोचक, प्रेरणाप्रद और साथ ही हृदय को अभिभूत करने वाला है। क्रूर अट्टहास करती हुई हिंसा पर अहिंसा की मधुर विजय का एक मनोरम दृश्य आँखो के सामने नाचने लगता है।

बालमुनि अभयरुचि एव बाल साध्वी अभयमती को राज-पुरुष पकड़ कर देवी को बलि चढाने के लिए ले जाते हैं। दिव्य युगल का वध करने की तैयारी हो रही है कि देवी उपासक क्रूर-कर्मा राजा मारिदत्त उनका परिचय पूछता है, और परिचय-परिचय मे ही अभय की साक्षात् मूर्ति मुनि अभयरुचि अपने पूर्व जन्मो की वह करुणकथा आत्म-कथा के रूप मे राजा को सुनाते हैं कि राजा का हृदय कांप उठता है, आँखो मे अश्रुधारा छूट पडती है, हाथ मे तलवार गिर पडती है और हिंसा की राक्षसी भयभीत होकर मुनि-चरणो मे नाक रगडने लगती है। हिंसा पर अहिंसा की अभूतपूर्व विजय का जयनाद गूंज उठता है।

यह कथानक आदि से लेकर अन्त तक बडा ही रोचक, विल-क्षण और चमत्कारी है, पर इसका चमत्कार नितात मानवीय या भावनात्मक है, किसी प्रकार के दैविक या तान्त्रिक चमत्कार का अवलम्बन लिये बिना भी इसका चमत्कार सिर चढकर बोलता है। अशुभ पर शुभ की, हिंसा पर अहिंसा की, क्रूरता पर करुणा की भावनात्मक विजय का और सिर्फ तत्त्व दर्शन द्वारा मानव हृदय परिवर्तन का बडा ही विलक्षण चित्रण इस कथानक मे है। भावनाप्रधान ऐसे चमत्कारी चरित्र विरल ही पढने को मिलते है।

एक दृष्टि से इस कथा के माध्यम से दो परम्परा या विचार-धाराओ का सघर्ष और फिर मिलन प्रदर्शित किया गया है। बलि

या यज्ञप्रधान हिंसाप्रेमी कर्मकाण्डी वैदिक परम्परा और करुणा, दया तथा आत्मसयम प्रधान श्रमण परम्परा का एक प्राक्कालीन सघर्ष—वैचारिक तथा व्यावहारिक सघर्ष चलता रहा है, अनेक वार इस संघर्ष ने उग्ररूप भी धारण किया है। पर आत्म-वलिदानी श्रमणों के धैर्य, ध्यान, आत्म-तेज और गभीर तत्त्व ज्ञान ने अन्त में मधुरता व सद्भाव के साथ हिंसा के ताप को समाप्त कर अहिंसा व करुणा की स्नेह वर्षा की है। मृत्यु मुँह मे जाते लाखो मूक व निरीह जीवों को अभयदान देकर प्रफुल्लित किया है।

प्रस्तुत कथानक मे भी इस वैचारिक सघर्ष को वडी मधुरता के साथ समाप्त करने की कला प्रदर्शित हुई है। जो वास्तव मे ही हिंसा पर अहिंसा की विजय की अमर कहानी है।

इतिहासकारो की दृष्टि मे यह कथानक सर्वथा काल्पनिक नहीं है। इसमे वर्णित स्थान, पात्र आदि ऐतिहासिक है। साथ ही इस प्रकार भी घटना भी उस युग की सही स्थिति का अकन है। ऐतिहासिक अनुमान से यह घटना भगवान महावीर के कुछ ही समय वाद की है।[1] भगवान महावीर का युग वलि प्रथाओ का युग था। इस युग मे वलि एव यज्ञ के इस प्रकार के वृहद् आयोजन होते रहते थे।

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ के कथा भाग की मूल घटना तीसरी चौथी शती की मानी जा सकती है। देखे—'जसहरचरिउं' प्रस्तावना डॉ० हीरालाल जैन।

राजा मारिदत्त यौधेय देश का राजा है, आज का पंजाव ही प्राचीन काल मे यौधेय देश कहलाता था। वहाँ नरवलि की क्रूर प्रणाली प्रचलित थी। राजपुर नामक राजधानी आज भी 'राजपुर' नाम से पजाव मे स्थित है।

यशोधर राजा का यह चरित्र जैन कथा साहित्य मे व्यापक रूप से प्रसिद्ध व मान्य है। श्वेताम्वर तथा दिगम्वर परम्परा में इस कथानायक पर पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। यद्यपि दिगम्वर श्वेताम्वर ग्रन्थो के कथा सूत्र मे कही-कही कुछ शब्द-भेद, घटना प्रसग का अन्तर भी है, किन्तु मूलकथा तथा अभिप्राय एक समान है।

हरिभद्र सूरि के 'समराइच्च कहा' मे यशोधर नृप-कथा कुछ सक्षेप मे आई है, पर यह कथा सूत्र सबसे प्राचीन माना गया है। स्वतन्त्र रूप मे महाकवि पुष्पदन्त ने अपभ्रंश मे 'जसहर चरिउ' की रचना की है, जो उपलब्ध काव्यो मे सबसे प्राचीन कृति है। मैंने मूलरूप मे इसी का आधार रखा है, किन्तु परम्परा-गत भेद के स्थान पर श्वेताम्वर ग्रन्थो का आधार मान्य किया है। जैसे—'जसहर चरिउ' मे अभयरुचि एव अभयमती को क्षुल्लक वताया है और राजा मारिदत्त के प्रवोध के साथ ही दे श्रमण दीक्षा लेकर मुनि वनते है, जवकि प्रचलित श्वेताम्वर पर-म्परा मे इन्हे वाल मुनि रूप मे ही मान्य रखा है।

प्राकृत-अपभ्रंश-सस्कृत मे लगभग १२-१३ रचनाएँ यशोधर चरित्र के नाम से प्रसिद्ध है।[1] इनके वाद गुजराती, राजस्थानी तथा हिन्दी मे भी अनेक कवियो तथा लेखको की रचनाएँ प्रका-

---

१. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग ६, पृ. ३८३

शित हुई है। पिछले १ हजार वर्ष से यह कथानक जैन समाज मे काफी प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय रहा है।

सरल प्रवाहपूर्ण उपन्यास शैली मे यह कथानक प्रस्तुत करने का गत दो वर्ष से मन में संकल्प था। धीरे-धीरे इस कार्य को पूर्ण किया। पूज्य स्वामी श्री बृजलाल जी महाराज का वात्सल्य पूर्ण सहयोग मेरी साहित्य यात्रा का सम्बल रहा है। साथ ही सेवाभावी मुनि विनयकुमार 'भीम', महेन्द्र मुनि 'दिनकर' का सहयोग भी मेरी साहित्य यात्रा का सहारा रहा है।

आत्मप्रिय साहित्यसेवी श्रीचन्द जी 'सुराना' का साहित्यिक सहयोग मेरे लिए सदा स्मरणीय रहेगा। उनके विनम्र आत्मीय भाव के कारण कथा साहित्य का बहुत बडा भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सका हूँ। सभी के सहयोग का सत्कार करते हुए पाठको से आशा करता हूँ कि वे इस मनोरम कथा सूत्र से दिव्य प्रेरणाएँ ग्रहण कर जीवन को कृतकृत्य बनायेगे।

महामन्दिर, जोधपुर —मधुकर मुनि

—:०:—

प्राक्कथन

कथा के माध्यम से मनोरजन के साथ-साथ नैतिक सदाचरण की शिक्षा देने का कार्य प्राचीन परम्परा से चला आ रहा है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इस पद्धति को 'कान्तासम्मत' उपदेश देने की पद्धति कहा है। युवाचार्य श्री मधुकर मुनि ने इस पद्धति को अपनाकर सदाचारयुक्त नैतिक जीवन जीने और सामाजिक चरित्र सगठन की महती प्रेरणा दी है। पिंजरे का पछी' मुक्त होकर जिस तत्त्व की 'तलाश' मे उडा वह उसे प्राप्त हुआ 'अहिंसा की विजय' मे। यही उनकी औपन्यासिक रचना की विकास-यात्रा है।

मुनिश्री प्राचीन साहित्य के गभीर अध्येता होने के साथ-साथ उसमे निहित उदात्त जीवन-मूल्यो को परखने-पकडने मे सिद्धहस्त है। पुरातन कथा-शरीर को आप नवीन भावबोध और शिल्प सज्जा से इस प्रकार अलकृत करते हैं कि वह समसामयिक परिवेश मे सप्राण बन उठता है। प्रस्तुत उपन्यास इस कथन का ज्वलन्त उदाहरण है।

'अहिंसा की विजय' उपन्यास की मुख्य कथा 'यशोधर चरित्र' से सम्बन्धित है। यशोधर चरित्र साहित्यकारो का अत्यन्त प्रिय और प्रेरक विषय रहा है। आठवी शती से लेकर अद्यतन यशोधर चरित्र को आधार बनाकर विविध रूपो और शैलियो मे अनेक ग्रन्थ लिखे गये है। हरिभद्रसूरि के प्राकृत ग्रन्थ 'समराइच्च कहा'

मे यशोधर राजा की कथा आई है। पुष्पदत ने अपभ्रंश मे 'जस-हर चरिउ' की रचना की है। दशवी शती मे संस्कृत मे लिखित, सोमदेव का विशालकाय 'यशस्तिलक' ग्रन्थ इसी कथा पर आधा-रित है। इसी शृंखला मे वादिराज, वासवसेन, वत्सराज, सकल-कीर्ति, सोमकीर्ति, माणिक्यसूरि, पद्मनाभ, पूर्णभद्र, क्षमाकल्याण, मल्लिभूषण, श्रुतसागर, हेमकुंजर, विजयकीर्ति, ज्ञानकीर्ति, देवसूरि आदि ने संकृत में; जिनचन्द्रसूरि, देवेन्द्र लावण्यरत्न, मनोहरदास आदि ने गुजराती में; चन्दनवर्णी-चन्द्रम जन्न कवि आदि ने कन्नड़ में; साह लोहट्ठ, खुशालचन्द्र, अजयराज, लक्ष्मीदास, ब्रह्मजिनदास, विवेकराज, आदि ने पुरानी हिन्दी में यशोधरचरित्र को आधार बनाकर विविध सज्ञक काव्यो की रचना की है। मुनि श्री की 'अहिंसा की विजय' कृति आधुनिक युग की औपन्यासिक शैली मे होने के कारण इस लम्बी परम्परा मे अपना विशिष्ट स्थान और महत्त्व रखती है। कथा का आधार लोकसम्मत परम्परा से प्राप्त करके भी मुनिश्री ने अपनी वर्णन-क्षमता और शिल्प-नैपुण्य से इसे भव्य, रोचक और आकर्षक बना दिया है।

इस उपन्यास मे अहिंसा धर्म की सूक्ष्म और गभीर व्याख्या की गई है। हिंसा-अहिंसा के द्वन्द्व से उपन्यास की कथा सघर्ष की ओर बढ़ती है। और अततः इसका पर्यवसान होता है—तप, सयम और वैराग्य की मनोभूमि मे। मानव चेतना की अधोमुखी और ऊर्ध्वमुखी वृत्तियो का चित्रण कर लेखक ने यह सकेतित किया है कि अधोमुखीवृत्ति काम-केन्द्रित होने से हिंसक, पाशविक और भोगमूलक है तथा ऊर्ध्वमुखीवृत्ति धर्म-केन्द्रित होने से अहिंसक, सात्विक और त्यागमूलक है। अधोमुखीवृत्ति के प्रतीक है मारि-दत्त, भैरवानंद नयनावली आदि और ऊर्ध्वमुखी वृत्ति के प्रतीक

है सुदत्त, कुसुमावली, अभयरुचि आदि। मानव जन्म की सार्थकता चेतना को ऊर्ध्वमुखी बनाने मे है। चेतना के ऊर्ध्वमुखी बनने का अर्थ है उसका अपने स्वभाव मे अधिष्ठित होना। यह स्वभाव है—क्षमाशील होना, विनम्र होना, सरल होना, सतोषी होना। जब-जब चेतना इन्द्रिय-भोगो की ओर प्रवृत्त होती है, अपने स्वभाव से विमुख होती है। उसमे राग-द्वेष के कषाय-भाव उत्पन्न होने लगते है और वह हिंसक बन जाती है, अपनी भी और दूसरो की भी।

इस उपन्यास का हार्द है—धर्म धारण करने की वस्तु है, प्रदर्शन की नही। जब-जब धर्म का प्रदर्शन किया जाता है, तब-तब वह अधश्रद्धा और आडम्बर का रूप ग्रहण कर लेता है। उसके साथ राग-द्वेष के भाव जुड जाते हैं, तब वह 'स्व' को नही 'पर' को देखने लगता है। 'स्व' को छोडकर 'पर' की पूजा-उपासना करने लगता है। इस प्रकार जीव 'स्व-तन्त्र' को छोडकर 'पर-तन्त्र' बन जाता है। यह परतन्त्रता एक प्रकार की हिंसा है।

इस हिंसा से तभी बचा जा सकता है जब अपने पुरुषार्थ और विवेक को जागृत किया जाय तथा यह समझा जाये कि सुख-दुःख देने वाला कोई 'पर' नही है। 'स्व-कृत' कर्म ही सुख-दुःख के कारक है। सद्प्रवृत्त आत्मा ही मित्र है और दुष्प्रवृत्त आत्मा ही शत्रु है। आत्मनिर्भरता की यह चेतना इस उपन्यास मे परिव्याप्त है। "जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा फल मिलता है।" इस सिद्धान्त की धुरी पर कथाचक्र चलता है और इसी मे से हिंसा-अहिंसा का द्वन्द्व उभरता है।

कर्मवाद का सिद्धान्त आत्मा की स्वतन्त्र चेतना और विकास का सिद्धान्त है, किन्तु स्वार्थलोलुपो ने उसे यज्ञादि क्रियाकाण्ड

और वलि-पूजा के विधि-निषेध के साथ जोड़ दिया। अनिष्ट-निवारण के लिए यशोधर की माता चन्द्रमती कात्यायनी देवी की पूजा और जीव-वलि के लिए यशोधर को प्रेरित करती है; यशोधर अहिंसा में विश्वास करता है। वह किसी जीव की वलि देने के स्थान पर अपना आत्म-वलिदान करना श्रेष्ठ समझता है। पर माता के आज्ञापालन से आवद्ध होकर वह जीवित पशु के वदले मे आटे से वनाये गये मुर्गे की वलि देने को वाध्य होता है और तात्कालिक दुष्परिणाम स्वरूप दोनों माता-पुत्र अकाल मृत्यु को प्राप्त होते है तथा मृत्यु के वाद छह जन्मो तक पशु योनि मे भटकते रहते है। पहले जन्म मे यशोधर मोर वनता है और उसकी माँ चन्द्रमती कुत्ता। दूसरे जन्म मे नेवला और सांप। तीसरे जन्म मे जल जन्तु मछली और मगर, चौथे जन्म में वकरा-वकरी, पाँचवे जन्म मे यशोधर पुन. वकरा और चन्द्रमती भैसा और छठे जन्म मे मुर्गा-मुर्गी। एक अवधिज्ञानी श्रमण के उपदेश से इन मुर्गा-मुर्गी को अपने पूर्व जन्मो का ज्ञान होता है और वे प्रायश्चित्त कर युगल भाई-वहिन के रूप मे जन्म लेते है अभयरुचि और अभयमती नाम से।

लगातार छह जन्मो तक पशुयोनि मे भटकने का रहस्य क्या है ? लगता है यशोधर ने देवी को आटे का मुर्गा चढाकर उससे समस्त जीवो की वलि करने का फल प्राप्त करने की कामना की, निःसन्देह यह देवी के साथ वहुत वडा छल था। इस छल-कपट (माया) के कारण ही तिर्यञ्च गति के कर्म का वंध हुआ। लेखक ने वड़ी सूक्ष्मता के साथ यह इंगित किया है कि यशोधर ने किसी प्रकार की द्रव्यहिंसा नही की केवल भावना से आटे के मुर्गे का वध किया। जब इसका इतना भयानक, त्रासदायक, क्रूर परिणाम

हुआ तो जो सचमुच भावनापूर्वक द्रव्यहिंसा भी करते हैं, उनका क्या होना होगा ? इस मनोवैज्ञानिक दवाव के कारण ही मारिदत्त का हृदय परिवर्तित होता है। मारिदत्त कौल मतानुयायी धर्मगुरु भैरवानद के प्रभाव मे आकर आकाशगामिनी विद्या प्राप्त करने के लिए, चडमारी देवी की पूजा-निमित्त जलचर-थलचर और नभचरो के अनेक नर-मादा जोडे तथा वाल मनुष्य-युगल के वलिदान की तैयारी करता है। मनुष्य-युगल के रूप मे प्रस्तुत किये जाते हैं—वालमुनि अभयरुचि और वालसाध्वी अभयमती। पर मुनि अभयरुचि से उनके पूर्वजन्म की कथा सुनकर मारिदत्त का हिंसक व्यक्तित्व अहिंसक वन जाता है और वलिदान के लिए एकत्र किये गये सारे प्राणी मुक्त कर दिये जाते है। मारिदत्त के साथ-साथ भैरवानन्द और देवी भी प्रायश्चित्त की आग मे तपकर अहिंसा-पथ पर आरूढ होते हैं। देवी के मन मे उठने वाले हिंसक और अहिंसक भावो के प्रभाव की सुन्दर व्यजना लेखक ने उसके व्यक्तित्व-चित्रण मे की है। हिंसक भावो से युक्त देवी की मूर्ति का यह विकराल भयकर रूप देखिये—

"जैसे दूज का चन्द्रमा दोनो सिरो पर नुकीला होता है, उसी तरह देवी की दाढे नुकीली और विकराल थी। उसके वक्ष पर मुण्डो की माला पडी थी। उनके स्तनो पर सर्प लिपटे हुए थे। उसकी तीन आँखे थी। उनसे अग्नि की ज्वालाओ के समान चिनगारियाँ फूट रही थी। उसकी जीभ वहुत लम्वी वाहर को निकली हुई थी, जो लाल पत्थर की वनी और रक्त से लथपथ थी। उसके कपोल चर्वी से लिप्त थे। उनके तन की आकृति मांस रहित पजर मात्र थी और वहुत भयकर लगती थी। प्रस्तर निर्मित उसकी देह पर मरघट की राख लिपटी थी।"

जब देवी क्रूर हिंसक भावो से मुक्त होकर अहिंसा, प्रम, दय
करुणा जैसे सात्विक भावों से युक्त होती है तो उसका वाह्
भयावह वीभत्स रूप सात्विक सौन्दर्य मे परिवर्तित हो जाता है—

"दैवी के कण्ठ मे होकर हार पडा था। उसके श्याम के
नितम्वो तक छिटके हुए थे। उसके एक हाथ मे स्वर्ण पात्र थ
और दूसरे मे पुष्प। देवी ने पात्र के जल से मुनि अभयरुचि
के पैर पखारे और उन पर मस्तक झुका कर वन्दना की।"

अहिंसा धर्म की जड है। शेष सव उसकी शाखाएँ है। अहिंसा
का पालन सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सद्वृत्तियों
को अपनी ओर खींच लेता है। इस वृत्ति से अहिंसक के मन में
सदा प्रसन्नता का भाव व्याप्त रहता है, यह प्रसन्नता उसे ससार
के सभी प्राणियो, जीवो, सत्त्वो और भूतों के प्रति मैत्री भाव में
वाँधती है। यह मैत्री भाव न किसी के प्रति राग करता है न द्वेष।
उसमे अनन्त करुणा और प्रेम भाव फूटता है। उसमे चित्त
निर्मल और भावना विशुद्ध वनती जाती है। चित्त की यह निर्म
लता और भाव-विशुद्धि अहिसक को वीर और निर्भय वना देती
है। सच्चा अहिंसक न जीने मे आसक्ति रखता है और न मृत्यु
से भयभीत होता है। अभयरुचि मुनि की यह निर्भीकता अहिंसा
की ही परिणति है। इसी माने मे अहिंसा वीरो का धर्म है।

इस उपन्यास मे प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और रक्षा का भाव
प्रतिपादित किया गया है। सभी प्राणियो मे मानव-योनि श्रेष्ठ
है, पर मानव के सुखोपभोग के लिए अन्य प्राणियो के वलिदान की
स्वीकृति यहाँ नही दी गई है। जनतन्त्र से आगे वढकर प्राणितन्त्र की
स्थापना व सर्वोदय की भावना से सवकी रक्षा और कल्याण कामना
उपन्यास की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

भगवान महावीर के युग मे और उनके बाद नवमी दशमी शताब्दी तक वैदिक क्रियाकाण्ड तथा वाममार्गी साधना मे धर्म के नाम पर क्रूरतापूर्ण बलि और हिंसा का विधि-विधान चरम-सीमा पर पहुँच गया था। यशोधर चरित्र को माध्यम बनाकर संवेदनशील लेखकों ने, इस घोर, भयंकर हिंसा का विरोध कर विश्व-वत्सला अहिंसा भगवती की प्रतिष्ठा की थी। देवी की उपासना रक्त और बलि चढाकर नही होती, वह होती है—क्रोध का शमन कर, अहं का विसर्जन कर, मूर्च्छा का दूर कर।

जो हिंसा उस समय धर्म के नाम पर होती थी, वही हिंसा वर्तमान युग मे अर्थ-संचय और औद्योगीकरण के नाम पर हो रही है। विज्ञान और तकनीकी विकास से जो औद्योगिक क्रान्ति हुई है उसने लोभ वृत्ति को असीमित बढा दिया है। आर्थिक विषमता बढने के साथ-साथ प्रदूषण की एक विकट समस्या पैदा हो गई है जो सम्पूर्ण मानवता के विनाश का कारण बन सकती है। कार-खानो से निकलने वाली विषैली गैसों, विषाक्त एवं हानिकर तरल पदार्थों तथा रासायनिक तत्त्वो के कारण जल-प्रदूषण एवं वायु-प्रदूषण निरन्तर बढता जा रहा है। संयुक्तराज्य अमेरिका के झीलप्रदेश मे आसपास के कारखानो द्वारा इतना अधिक हानिकर तरल पदार्थ झीलो मे बहा दिया जाता है कि उससे लाखो मछलियाँ मर जाती है। जापान के आसपास के समुद्री जल की भी यही स्थिति है। इस प्रकार तीव्र औद्योगीकरण से मानव-शोषण के अतिरिक्त हिंसा की नई-नई सम्भावनाओ के द्वार खुलते जा रहे है। सौन्दर्य-प्रसाधनो के निर्माण से ह्वेल मछली, खरगोश, भेड, मेमना, मृग आदि की हिंसा के क्रूर प्रसंग दिल दहलाने वाले

है। शोषण और हिंसा के इस दुष्चक्र से मानव की मुक्ति कैसे हो यह आज के सन्दर्भ मे विचारणीय है।

'अहिंसा की विजय' उपन्यास लिखकर वस्तुतः मुनिश्री ने आज के निष्करुण युग को प्रेम और दया का महान सदेश दिया है और साकेतिक ढंग से यह प्रतिपादित किया है कि आकाश में उड़ने के लिए, द्रुतगामी साधनों की प्राप्ति मे अपने ज्ञान और पुरुषार्थ का उपयोग करना आवश्यक नही, आवश्यक है अपने अन्तर् मे निहित सुप्त शक्तियो को जागृत करने मे साधनाशील होना, गगनयात्रा से नही बल्कि मनोयात्रा से ही ज्ञान विज्ञान मे, विज्ञान विवेक मे, विवेक त्याग मे, त्याग सयम मे और सयम निर्वाण मे रूपान्तरित हो सकता है। यह रूपान्तरण ही सच्ची विजय है जो अहिंसा, सयम और तप रूप धर्म के बिना सभव नही।

मुझे विश्वास है, युवाचार्यश्री मधुकर मुनिजी द्वारा लिखित और साहित्यसेवी श्रीचन्द सुराना के लेखनी शिल्प-स्पर्श से आभूषित यह उपन्यास वर्तमान मे बढती हिंसा-मूलक वृत्तियां को अहिंसा-धारा की ओर मोड़ने में भूमिका बनेगा।

—डॉ० नरेन्द्र भानावत

(एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

३ दिसम्बर, १९८०
सी-२३५ ए, तिलकनगर
जयपुर—३०२००४

अ हिं सा की वि ज य

अहिंसा की विजय

१

अग-वग, कलिंग, मगध, मालव, कोसल, वत्स, गुजरात आदि अनेक राज्य अपनी-अपनी सीमा मे समुन्नत, समृद्ध और खुशहाल थे। इस तरह समस्त भरतक्षेत्र इन राज्यो मे उसी तरह बँटा और फैला था, जैसे कई बडा नगर अनेक आवास-क्षेत्रो—मुहल्लो मे बँटा होता है। भरतक्षेत्र मे प्रचलित बहुरगी रुचि, विचारधारा और मान्यता-विश्वास के कारण यहाँ एकाधिक धर्मों का प्राबल्य था।

धरा धर्मरूपी धुरी पर ही टिकी होती है। यदि धरा पर धर्म न रहे तो वह रसातल को चली जाये और उसके ऊपर का वितान—आकाश भी न रहे। पर धर्म के साथ अधर्म भी होता ही है, क्योकि जैसे पाप पुण्य को, दुख सुख को और रात दिन को अस्तित्व प्रदान करते है, उसी तरह अधर्म भी धर्म का मान बढाता और उसके वन्दनीय स्वरूप को प्रकट करता है।

भरतक्षेत्र मे मुख्य रूप से दो धर्म विश्वास प्रचलित थे। इनमे एक मिथ्यावादी धर्म था, जो वस्तुत. अधर्म ही था और दूसरा वह, जिसे धारण करके मानव मात्र अपने जन्म को सार्थक कर सकता है, वह था अहिंसा-दयाधर्म।

वैदिक धर्म और निर्ग्रंथ श्रमणधर्म—दोनो ही अहिंसामूलक

धर्म धरा पर प्रचलित थे। 'सर्वा आशा मम मित्र' भवन्तु' और **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।'** यह विचारधारा वैदिक धर्म की थी और 'सबको दु:ख अप्रिय और सुख प्रिय है अतः प्राणीमात्र अवध्य है,' यह मान्यता निर्ग्रन्थधर्म की थी। दोनो ही अहिंसा मे विश्वास और आस्था रखने वाले धर्म थे, किन्तु कुछ स्वार्थियों, मासलोलुपो और प्रपची लोगो ने वेदो के नाम पर पशु-बलि, हिंसा और मास-भक्षण का प्रचार-प्रसार वेदो की झूठी दुहाई दे-देकर धर्म के नाम पर भी किया।

फिर तो इस मिथ्यावादी धर्मरूप अधर्म का ऐसा प्रचार हुआ कि हिसा ही धर्म वन गई। गाल वजाने वाले वाह्मण ही पडित माने गये। आत्मोद्धार, परलोक-निर्माण और सासारिक सुख-शान्ति के लिए पशुओ की वलि—यहाँ तक कि नरबलि भी चारों ओर होने लगी। ऐसे समय मे भी जिनधर्म अथवा श्रमण-धर्म का ज्ञानालोक फैलता रहा जिसके तीर्थंकर और मुनि वलि-धर्म को अनिष्टकारी वताकर जीव-दया की अमृत-मयी धारा प्रवाहित करते रहे।

जहाँ कही भी निर्ग्रन्थ श्रमण जाते, उनकी देशना सुनने के लिए जनसमूह उमड पडता। वे सच्चे धर्म का ज्ञान कराते और वताते कि दया ही धर्म का मूल है और अहिंसा ही एकमात्र कल्याणकारी धर्म है। इनकी वाणी से जनता भी प्रभावित होती और श्रावकाचार ग्रहण करती। अनेक मिथ्यात्वी राजा भी श्रमणधर्म के अनुयायी वने। इतने पर भी कुछ मोहान्ध राजा—ऐसे राजा भी जिनका वंशानुगत धर्म निर्ग्रन्थधर्म था, मिथ्यात्व धर्म के अनुगत हुए और आखेट, वलि-यज्ञ को अपनाये रहे। इस

तरह भरतक्षेत्र की धरा पर धर्म-अधर्म—दोनो का ही प्रचार-प्रसार होता रहा।

ऐसे समय मे ही कलिंग नामक देश मे अमरदत्त नाम के राजा राज्य करते थे। कलिंग की राजधानी वसन्तपुर नामक नगर था। यही नरराज अमरदत्त अपनी रानी अनगवती और पुत्र सुदत्त के साथ रहकर प्रजापालन करते थे। ये राजा शूरवीर, प्रजावत्सल और न्याय-परायण थे।

उर्वराभूमि, सदानीरा नदियों, प्रचुर खनिज सम्पत्ति आदि की दृष्टि से कलिंग देश बहुत ही समृद्ध और खुशहाल था। इस पर राजा अमरदत्त का सुशासन सोने मे सुगध था। यहाँ की प्रजा सुख-शान्ति से अपना जीवन बिता रही थी।

कलिगराज अमरदत्त निर्ग्रन्थधर्म के अनुयायी और श्रमणोपासक श्रावक थे। जब से उन्होने श्रावकव्रतो को ग्रहण किया था, तभी से आखेट करना छोड दिया था। रानी अनंगवती भी श्रमणोपासिका और धर्मनिष्ठ नारी थी। यही कारण था कि युवराज सुदत्त भी माता-पिता के प्रभाव से अभयदानी, पर-दुःख-कातर और धर्मनिष्ठ तरुण था।

सुदत्त समस्त कलाओ मे योग्य था। वह प्रथम श्रेणी का धनुर्धर और वीर योद्धा था। इनके अतिरिक्त, राजनीति, व्याकरण, साहित्य, इतिहास, काव्य आदि विविध विषयो मे भी वह निष्णात था। उसे पाकर राजा-रानी ही नही, कलिंग की प्रजा भी गर्व का अनुभव करती थी, क्योकि वही तो इस राज्य का भावी शासक था।

नरपाल अमरदत्त अब सुदत्त को राजसिंहासन सौंपकर श्रामणी दीक्षा अगीकार करना चाहते थे। पर दैव कुछ और

ही चाहता था, सो वे अचानक ही परलोकवासी हो गये। इसीलिए तो कहते है कि 'कल' या 'फिर' का कोई भरोसा नही। विवेकवान पुरुष इसीलिए न तो आज के विषय मे सोचते है और न कल के लिए टालते है। वे तो 'अब' को ही देखते है। जो भी हो, राजा अमरदत्त के परलोकवासी होने से देशभर मे शोक छा गया।

युवराज सुदत्त तो फूट-फूटकर रोया। पिता की मृत्यु से उसे संसार की असारता स्पष्ट दीखने लगी। अत. उसने राज्यासीन न होने का निश्चय कर लिया। एक महीने तक मंत्री मतिधीर ने राज्य व्यवस्था सम्हाली। लेकिन इस तरह सिंहासन कब तक सूना पडा रहता ? आखिर एक दिन सभी अमात्यजन एकत्र हुए और महामात्य मतिधीर ने युवराज सुदत्त से कहा—

"युवराज ! सृष्टि का अटल नियम है, जो यहाँ आता है, वह जाता भी है। जो जन्म लेता है, वह मृत्यु को प्राप्त होता ही है। इसलिए महाराज अमरदत्त के परलोकवास का अधिक शोक करने से कुछ लाभ नही। संसार मे रहकर धैर्य ही एक सहारा है। कलिंग देश की प्रजा आपको राजसिंहासन पर बैठा देखने के लिये तरस रही है।"

"जो आता है, वह जाता भी है। आपने ठीक ही कहा है मंत्रिवर !" युवराज सुदत्त ने मंत्री मतिधीर से कहा—"लेकिन जीव यहां आता क्यों है, यह भी तो सोचें। क्या मेरे पिताजी इसीलिए इस संसार मे आये थे कि सासारिक भोग भोगकर चले जाएँ ?

"महामत्री ! यह राज्य न तो उनके साथ गया और न मेरे साथ जायगा। अतः मैं जिस लिए यहाँ आया हूँ, वही करूँगा।

मेरी जन्म-यात्रा का उद्देश्य अपना लक्ष्य अथवा शिवपुर की प्राप्ति है। अत. मैं राज-सिंहासन पर नही बैठूंगा। मुझे तो दीक्षा लेकर अपना कल्याण करना है।"

मत्री ने कहा—"ऐसा तो सभी राजा करते है। आपकी भी कुल-परम्परा यही रही है कि युवराज को राज्य देकर संयम का पालन करें। आपके पितामह जितशत्रु ने भी आपके पिता अमर-दत्त राजा को राजमुकुट सौंपकर सयम वरण किया था।

"युवराज! मैं कब कहता हूं कि आप सयम-वरण न करें? अवश्य करें, पर समय आने पर उसी तरह करे, जैसे आपके पूर्वज करते आये है। अर्थात् आपके पुत्र हो, वह बडा हो और तब आप उसे राज्यभार सौंपकर चारित्र ग्रहण करें।"

शोकसतप्त युवराज सुदत्त को मन्त्री की बात पर हँसी आ गई। बोला वह—

"महामन्त्री! मेरे पिता की बात आप क्यो छोड गये? उन्होने भी तो यही चाहा था कि मुझे राजमुकुट सौंपकर दीक्षा ले। पर कालबली ने उनकी इच्छा कब पूरी होने दी?

"मन्त्रीवर! मृत्यु का तो कोई भरोसा ही नही है। जाने कब आ जाये? अत. आप सब मुझे सयम की ही अनुमति दीजिए।"

मन्त्री ने पुन कहा—"युवराज! पारलौकिक धर्म के साथ लौकिक धर्म का पालन करना भी मनुष्य का कर्तव्य है। पिता के राज्य का सचालन करना पितृऋण चुकाना है। आपका धर्म यह भी है कि आप कलिंग देश की प्रजा का पालन करें। कुछ दिन तो करें।

"युवराज ! आपके गृह-त्याग के विचार को सुनकर ही महारानी अनंगवती ने अन्न-जल छोड दिया है। यदि वे इसी तरह रही तो उनका प्राणान्त हो जायगा। अत. माता के जीवन के लिए आपको एक बार तो सिंहासनासीन होना ही पडेगा। उनकी अनुमति के विना आप दीक्षा लेंगे भी कैसे ?"

युवराज सुदत्त विचार मे पड गया। सोचने लगा वह—'लगता है अभी वह सुदिन नहीं आया कि मै मुनि दीक्षा लूं। मन्त्री ने ठीक ही कहा। रानी माँ की अनुमति के विना मै दीक्षा कैसे लूंगा ? कुछ दिन के लिए राज्य का सचालन कर अन्य व्यवस्था भी करनी चाहिए।'

यह सोच युवराज सुदत्त ने मन्त्री को अपनी सहमति दे दी कि वे सिंहासनासीन होगे। वस, अव तो कलिंग देश की प्रजा हर्षसागर मे डूब गई। कैसा विचित्र है यह ससार कि कल तक जो प्रजा, अमात्यजन तथा रानी अनगवती दिवगत राजा अमरदत्त के शोक मे डूबे थे, वही सव अव युवराज सुदत्त के राजा वनने की खुशी मे निमग्न हो गये। ऐसा ही होता है। मनुष्य रोते-रोते हँसता है और हँसते-हँसते रोने भी लगता है। हर्ष शोक और हास्य-रुदन के द्वन्द्व से भरा है यह असार ससार।

वसन्तपुर के मार्ग सँवारे गये। वीथियाँ स्वच्छ की गईं। इत्र-फुलेल का छिडकाव हुआ। वड़ी दूर-दूर के राजा कलिगराज सुदत्त को वधाई देने आये। वड़ी धूप-धाम से सुदत्त का राज्याभिषेक हुआ। सुदत्त अव राजा सुदत्त थे और प्रीतिमती अव रानी थी। अनंगवती राजमाता वनी। वडे ही आत्म-विश्वास और भरोसे के साथ नरराज सुदत्त ने पिता का राज्य सम्हाल लिया।

सुदत्त भी अपने पिता की तरह सुशासक और प्रजावत्सल थे। इस परिवर्तनशील संसार मे ऐसे ही परिवर्तन होते रहते है।

× × ×

सुदत्त राजा के शासनकाल मे यद्यपि कलिंग की प्रजा सुरक्षित-रक्षित थी। फिर भी एक दिन एक चोर रँगे हाथो चोरी करते पकडा गया। न्याय के लिए उसे राजसभा मे लाया गया। राजा सुदत्त ने न्यायमन्त्री हस से पूछा—

"हमारे न्यायाधिकरण मे चोर को क्या दण्ड देने का विधान है ?"

न्यायमन्त्री ने कहा—"राजन् ! चोर के लिए गुरुतर दण्ड प्राणदण्ड है और उससे हल्का है चोर के हाथ-पैर काट देना या फिर केवल दोनो हाथ ही काटकर छोड देना।"

"लेकिन यह तो अन्याय है।" राजा ने सिहरकर कहा—"इससे क्या होगा ? क्या इससे चोर का सुधार हो जायगा ? हाथ-पैर काट देना तो मृत्युदण्ड से भी बढकर हुआ। मै ऐसा अमानुषिक दण्ड नही दे सकता।"

अब महामन्त्री मतिधीर बोले—राजन् ! जिस सिंहासन पर आप बैठे है, उसकी मर्यादा के अनुसार अपराधी को वैधानिक दण्ड देना अनिवार्य है। राजा साधु-सन्त तो होता नही, जो दया करके अपराधी को छोड दे। इससे अपराध की प्रवृत्ति बढती है।

"राजन् ! दण्ड का उद्देश्य अपराधी का सुधार करना ही नही, अन्य अपराधियो को परोक्ष चेतावनी देना भी है। ऐसे कठोर दण्ड के कारण ही हमारे यहाँ चोरियाँ नही होती। यदि

साधारण दण्ड देकर ही चोर को छोड दिया जाये तो फिर चोरियाँ बढ़ जायेगी। अतः इस चोर को प्राणदण्ड देना ही न्याय-संगत है।"

राजा सुदत्त ने कहा—"मन्त्रिवर ! राजा होने से पहले मैं एक मनुष्य हूँ। यदि मुझे ऐसे अमानुषिक दण्ड देने पडेगे तो मुझे नही चाहिए यह राज्य....।"

इसी बीच राजपुरोहित अपने आसन से उठे और बोले—

"राजन् ! नर बनना या नारी बनना अपने हाथ की बात नही है लेकिन भाग्य से बने नर या नारी अपने-अपने कर्तव्य का पालन करें, यह उनके हाथ की बात है। एक नारी यदि यह कहे कि मैं माता बनना तो चाहती हूँ पर प्रसव-पीड़ा के महाकष्ट को सहन नही कर सकती तो यह कैसे सम्भव होगा ?

"राजन् ! इस तरह राजा बनने पर राजधर्म का पालन तो अनिवार्य ही है। साम, दाम, दण्ड और भेद ये राजा के चार आयुध होते हैं। इन्ही के कारण राजा चतुर्भुज होता है। किसी एक की कमी के होने पर राज्य चल ही नही सकता। अत' दण्ड विधान का पालन दृढता से करना ही पड़ता है।"

राजा सुदत्त ने राजपुरोहित से पूछा—

"तो क्या मैं पाप का भागी नही बनूंगा ? कोई भी राजा पापकर्म करने के लिए वाध्य क्यो है ?"

राजपुरोहित ने कहा—"राजन् ! राजा यदि अपराधी को छोड़ता है तो उसे पाप लगता है। यदि राजा अपराधी को दण्ड देता है तो अपराधी तो पाप-मुक्त हो जाता है और वह पाप राजा को लगता है अर्थात् अपराधी को छोडने और दण्ड देने—

दोनो ही दशाओ मे राजा को पाप लगता है। लेकिन दूसरी दशा मे राजा की प्रजा सुरक्षित रहती है। इसलिए राजा को पुण्य-पाप का विचार नही करके कर्तव्य का विचार करना पडता है।"

राजा सुदत्त ने न्यायमन्त्री और महामन्त्री से पूछा—

"आपकी अन्तिम राय क्या है?"

"देव प्रमाण है। वैसे न्याय विधान यही है जो हमने वताया।"

दोनो मन्त्रियो ने अपना मत देकर शेष निर्णय राजा पर ही छोड दिया। राजा सुदत्त ने अपने विशेष अधिकार का प्रयोग किया और मन-ही-मन चोर को छोड़ने का निश्चय करते हुए नतशिर, साश्रुनयन चोर से पूछा—

"हे चोर! मरने के वाद अर्थात् प्राणदण्ड पाने के अनन्तर तुम इस ससार के साथ चोरी भी छोड़ दोगे—छोडनी पडेगी। क्या तुम प्राणदण्ड या कोई भी दण्ड पाये विना भी चोरी छोड़ सकते हो? यदि तुम मुझे आश्वासन दो तो मैं अपने देश के न्यायाधिकरण का उल्लघन करके तुम्हे मुक्त कर सकता हूं।"

राजा की ये वाते सुनते ही चोर की आंखो से झर-झर आंसू झरने लगे। अवरुद्ध कठ से उसने कहा—

"अन्नदाता! अपना हृदय चीरकर मैं कैसे रखूं? पर आपको विश्वास दिलाता हूं कि अव कभी चोरी नही करूंगा। आपने तो मुझे दूसरा जन्म दिया है।

"पृथ्वीनाथ! पेशेवर चोर तो मै कदापि नही हूं! भूखा व्यक्ति क्या पाप नही करता? इसीलिए भूख से पीडित मैं चोरी

कर बैठा। अब मैं यदि मरूँगा तो भूख से मरूँगा, पर चोरी करके प्राणदण्ड पाकर नही मरूँगा। मेरा विश्वास करे, नरनाथ!"

चोर के ये शब्द सचाई से भरे थे। सचाई प्रभावित करती है। राजा सुदत्त भी प्रभावित हुए और उन्होने पर्याप्त धन देकर चोर से कहा—

"जिस राजा के राज्य मे कोई भूखा रहे, वह राजा भी क्या राजा है? यह धन स्वीकार करो और अपना जीवन सचाई के साथ गुजारो। मै तुम्हे मुक्त करता हूँ।"

राजा सुदत्त की जय-जयकार करता हुआ चोर सभा से बाहर हो गया। सभा अवाक् थी। इस घटना से राजा सुदत्त का मन उद्विग्न हो गया था, सो उन्होने सभा विसर्जित कर दी और उठकर अपने मणिखचित अलिन्द मे गये। रानी प्रीतिमती ने उनका स्वागत किया।

आज की घटना से राजा सुदत्त ने निश्चय किया कि मैं राजा बनने के योग्य नही हूँ। वे सोचने लगे—'साम, दाम, दण्ड और भेद इन चारो मे एक भी कम तो राजा, राजा नही। यह तो एक विडम्बना है। आज तो मैंने विशेषाधिकार से एक चोर को छोड दिया, पर सदा तो ऐसा नही हो सकता। यदि मैं अपराधियों को छोडता रहूँगा तो लोक परिषद विरोध करेगी। व्यवस्था बिगड़ जायेगी। राजा होने के लिए तो ऐसा पुरुष चाहिए, जिसका हृदय पत्थर का हो। अब यदि कोई मुनि आये तो मैं उन्ही की शरण मे जाऊँ। मुझे तो दया की शरण लेनी है, करुणा का अमृत पीना है....।'

बहुत रात गये तक राजा सुदत्त करवटे बदलते रहे और इसी तरह सोचते रहे। बडी रात गये उन्हे नीद आई। पास ही महारानी प्रीतिमती का पर्यक था। वे भी सोई थी।

रात्रि का मध्य प्रहर बीता होगा कि अचानक राजा सुदत्त बडे जोर से चीख पडे। यह चीख इतने जोरो की थी कि पास मे ही बिछे पर्यक पर सोई रानी प्रीतिमती हडबड़ाकर उठ बैठी और राजा को झकझोर कर जगाया।

राजा सुदत्त जाग तो गये, पर भय के मारे उनका हृदय बडी जोरो से धडक रहा था। पसीने से शरीर भीग रहा था। भय-भीत राजा को देख रानी ने पूछा—

"क्या हुआ स्वामिन्! आप चीख क्यो रहे थे? क्या कोई डरावना सपना देखा था?"

"हाँ रानी!" राजा ने कहा—"बडा भयकर सपना था। लगता है अब भी मैं वन मे भटक रहा हूँ। वन्य हाथी ने मुझे उठाकर फेका था।"

"क्या हुआ महाराज! क्या दु:स्वप्न देखा आपने?" रानी ने राजा का पसीना पोछते हुए शीतल जल का कटोरा भरकर सामने किया।

राजा सुदत्त ने कहा—"एक भयकर दु स्वप्न था। किसी राजा ने हम पर आक्रमण किया, राज्य छीन लिया, मैं अकेला वन-वन भटक रहा हूँ तभी एक मदोन्मत्त गजराज ने सूँड मे पकड-कर मुझे आकाश मे उछाल दिया, सहसा मै चीख उठा...."

राजा ने रानी को अपना सपना पूरा ही सुना दिया। सपना सुनकर रानी प्रीतिमती ने कहा—

"स्वामी! सपने के मेह मे कौन भीगता है? अब तो आप

जाग ही गये। अब क्यो चिन्ता करते हैं ? क्या अब भी आपको इसमे सन्देह है कि आप कलिगराज नही है ?"

"मैं जाग गया हूँ या अब भी सो रहा हूँ, इसमे मुझे सन्देह है।" राजा सुदत्त ने रानी प्रीतिमती से कहा—"मैं कलिग का राजा हूँ, यह सच है या मेरा राज्य किसी दूसरे राजा ने छीन लिया है, यह सच है....?"

"सपने की बात पर ज्यादा सोचना ही गलत है।" रानी ने कहा—"मैं तो इतना ही जानती हूँ कि सपना, सपना ही होता है।"

"अब उठूँ रानी !" राजा ने कहा—"मेरी सभा मे बडे-बडे पण्डित हैं। मैं उन्ही से पूछूँगा कि वह सच था, जो मैंने सपने मे देखा था या यह सच है, जो मैं अब देख रहा हूँ।"

यह कह राजा सुदत्त नित्यकर्म में लग गये। यथासमय वे नित्यकर्म से निवृत्त हुए और धर्मक्रियाएँ सम्पन्न की। इसके बाद वे राजसभा मे गये और अपना सपना सुनाकर सभी से पूछा—

"वह सच था या यह सच है ?"

"राजन् ! सच तो यही है, जो आप अब है।" एक पण्डित ने कहा—"यह तो मोटी-सी बात है कि जागने के बाद की स्थिति सच होती है।"

राजा ने प्रश्न किया—"यदि यह सच है तो मैं वह क्यो बना, जो अब नही हूँ ? यदि मेरा वन-वन भटकना और वन्यगज द्वारा उछालना सच नही तो ऐसा हुआ क्यो ?"

समाधानकर्ता निरुत्तर हो गया। यदि राजा होना सच है तो राजा भिखारी क्यो बना ? इसका उत्तर कोई नही दे पाया तब एक अन्य पण्डित ने साहस करके कहा—

"पृथ्वीनाथ ! यदि अभय दे तो मै कुछ निवेदन करूँ ।"

"अभय ।" राजा ने कहा—"निर्भय होकर कहो विप्र !"

विप्र ने कहा—"राजन् ! कुछ सपने आगत के सूचक होते है । सपने सच्चे भी होते है । आपका सपना सच्चा था । किसी भावी आक्रामक से बचने के लिए हमे उद्योगरत रहना चाहिये ।"

राजा ने इससे भी प्रश्न किया—

"यदि वह सच था तो मै वही क्यो नही हूँ ? जागने पर मेरी स्थिति बदल क्यो गई ? मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर दो ।"

इसका भी कोई उत्तर नही दे पाया । बडी विचित्र स्थिति थी । अब तक तो लोग स्वप्न का फल पूछा करते थे और राजा सुदत्त एक नई बात पूछ रहा है कि सपना सच था या ससार सच है । कोई क्या उत्तर देता ?

राजा सुदत्त का भाग्य कि वसन्तपुर मे मुनि सुमतिसागर पधारे । उनके साथ सैकडो श्रमण थे । अब तो राजा के हर्ष का ओर-छोर न रहा । उन्होने सिंहासन से उतर मुनि की भाव-वन्दना की और सदेशवाहक वनपाल को अपने कंठ का रत्नहार इसलिए दिया कि उसने बहुत ही शुभ सवाद दिया था ।

समस्त नगर मे मुनि-आगमन की चर्चा होने लगी । नर-नारी उनके दर्शनो को ऐसे उमड चले, जैसे रक सोना 'लूटने' भागते है । राजा सुदत्त भी राज-परिवार सहित मुनि-दर्शन करने गये ।

मुनि सुमतिसागर ने कल्याणकारी देशना दी । देशना के अनन्तर राजा सुदत्त ने मुनिश्री को अपना सपना सुनाया और करबद्ध होकर पूछा—

"भन्ते ! सच क्या है ? वह सच था या यह सच है ?"

धीर-गम्भीर वाणी मे मुनि बोले—

"राजन् ! न यह सच है और न वह सच था। सत्य क
कभी अभाव नही होता और असत्य स्थिर नही रहता। अ
स्वप्न भी सत्य नही है और ससार भी सत्य नही है। न वह र
और न यह रहेगा। यह सब मोह का द्वन्द्व है।

"राजन् ! स्वप्न देखते समय वह सच लगता है और जाग
पर असत्य। ऐसे ही भोगते समय यह ससार भी सत्य लगता है
क्योकि भोक्ता भी मोह-निद्रा मे सोया हुआ रहता है। सपने
भी लोग जागते है—तृष्णा के पीछे भागते-दौड़ते हैं। ऐसे ही इ
समय देखने पर जो लोग हमे चलते-फिरते लग रहे हैं, वे स
सोये हैं मोह नीद मे।

"राजन् ! सभी ससारी मोहनिद्रा मे सोते है, और नान
प्रकार के सपने देखते है। जीवन की विगत घटना और देखे हु
सपने मे क्या तुम कोई अन्तर कर सकते हो ?

"राजन् ! जैसे जागने पर सपने का दुःख नही रहता, ऐ
ही जागने पर संसार का दुःख नही रहता। जाग सको त
जागो।"

जाग गये राजा सुदत्त। मुनि की देशना ने उनकी आँ
खोल दी। चोर को प्राणदण्ड देने की कल्पना से वे पहले ही
राज्य-त्याग का निश्चय कर चुके थे। मुनि की देशना ने उनके
निश्चय को और भी पक्का कर दिया। प्रतिबुद्ध राजा सुदत्त ने
मुनि सुमतिसागर से कहा—

"मुने ! मेरा मन इस स्वप्नवत् ससार मे अब नही रम
सकता। मुझे अपने चरणो का आधार दीजिए। मैं सयम के लिए
कृत-सकल्प हूँ।"

मुनि बोले—"देवानुप्रिय ! जैसा करने मे तुम्हे सुख लगे, वही करो। पर धर्माचरण मे विलम्ब मत करो।"

मुनि के इन शब्दो मे दीक्षा की अनुमति थी। राजा सुदत्त राजमाता अनगवती और रानी प्रीतिमती से दीक्षा की अनुमति लेने राजभवन मे पहुँचे। इन दोनो सास-बहू ने सुना तो बिलख-कर रोने लगी। अनगवती ने कहा—

"पुत्र ! मुनि बनकर भी तो तुझे ससार मे ही रहना पड़ेगा। फिर तेरे संसार-त्याग का क्या अर्थ रहा ? यदि तुझे धर्मपालन ही करना है तो घर मे रहकर क्यो नहीं करता ?"

राजा ने कहा—"अम्ब ! जो कुछ हम-तुम देख रहे है, यह संसार नही है। 'मेरा' का नाम संसार है। इस 'मेरा' का त्याग ही ससार-त्याग है। इसलिए तो मुनिजन ससार मे रहकर ससार-त्यागी हैं।

"अम्ब ! जननी, जनक, बन्धु, पुत्र, पत्नी, शरीर, धन-सम्पत्ति, भवन, मित्र और परिवार —इन दसो मे ममत्व रखना ही संसारिकता है। ससार त्यागने के बाद तो कुछ भी 'मेरा' नही रहता। यह शरीर भी मेरा नही है। अतः हे अम्ब ! मुझे अपना जन्म सुधारने दो। धर्मकार्य मे अन्तराय मत बनो। मुझे दीक्षा की अनुमति दे दो मैया !"

राजमाता अनगवती कुछ कहे कि उससे पहले रानी प्रीति-मती बोली—"स्वामी ! माताजी से अनुमति लेने के बाद आप मुझसे भी अनुमति मागेंगे। लेकिन मैं ही आपसे अनुमति माँगती हूँ। आप के साथ मैं भी दीक्षा लूँगी। मेरा भी तो परलोक है। मैंने आपकी पत्नी का आवरण ओढा था। उसे मैं उतारती हूँ।

शरीर तो वाहरी दिखावा है। मूलतः तो हम दोनो आत्माएँ है
आत्मा न स्त्री होती है, न पुरुष। मुझे अनुमति दें स्वामी !"

"अनुमति है रानी !" राजा सुदत्त ने कहा—"इससे अच
प्रस्ताव और क्या होगा ? हम दोनो ही दीक्षा लेंगे और अ
हम दोनो को ही अनुमति देंगी।"

"मैं किसी को अनुमति नही दूंगी।" राजमाता अनगवती
कहा—"क्या तुम दोनो का ही परलोक है, मेरा नही ? मे
पुत्र और पुत्रवधू केशलुंचन करे और मै बुढापे मे यहाँ बैठी र
तो मुझसे अधिक अधम नारी कौन होगी ? तुम दोनो के साथ
भी धर्मनौका पर बैठकर उस पार जाऊँगी और अपनी या
सफल करूँगी।"

राजा सुदत्त सहित इन दोनो ने भी दीक्षा अगीकार की
कलिंग का राज्य सुदत्त राजा के एक निकट सम्बन्धी को सौ
गया। राजर्षि सुदत्त, साध्वी अनगवती और प्रीतिमती ने
सुमतिसागर के साथ अन्यत्र विहार किया।

मुनि सुदत्त मनोयोग से सयम का पालन करने लगे। र
करते-करते उनकी देह क्षीण अवश्य हो गई थी पर तेज-ब
उतना ही बढ गया था। जैसे यात्रा मे मजिल पर पहुँचने
पहले अनेक पडाव पड़ते हैं, उसी तरह साधना के मार्ग मे तपस
साधक को अनेक लब्धियाँ प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों मे इ
तप की विभूतियाँ कहते है।

मुनि सुदत्त ने भी अनेक लब्धियाँ प्राप्त की थी। पर उनक
प्रदर्शन उन्होने कभी नही किया, क्योकि बीच की उपलब्धिय
लक्ष्य नही होती। यदि यात्री पड़ाव पर ही रुका रहे तो व
मंजिल तक कैसे पहुंचेगा ?

बहुत दिनो तक तो मुनि सुदत्त ने गुरु के साथ विहार किया। फिर गुरु की अनुमति से एकाकी विहार करते हुए 'स्व' के साथ 'पर' का भी कल्याण करने लगे।

मुनि सुदत्त जहाँ भी जाते, वहाँ की सब प्रतिकूलताएँ अनुकूलताओ मे बदल जाती। रोग, महामारी जादू की तरह दूर होते। सूखे वृक्ष हरे हो जाते। हिंसक जीव अहिंसक बनते, यहाँ तक कि जन्मजात वैरी सर्प-मयूर, कुत्ता-बिल्ली, मृग और बाघ साथ-साथ बैठते। धन्य तप! धन्य साधना!

मुनि सुदत्त की वाणी का श्रवण कर चोर धर्मनिष्ठ बन जाता था। वधिक अपना खड्ग दूर फेंककर अहिंसा व्रत धारण करता था। कहाँ तक कहे, उनके तप का प्रभाव! वे जिस वृक्ष के नीचे बैठते वहाँ की छाया भी स्थिर हो जाती। कवि की सामर्थ्य ही क्या है? हजार मुख वाले शेष और वाग्देवी सरस्वती भी तप के प्रभाव का वर्णन नही कर सकती।

संक्षेप मे मुनि सुदत्त—राजर्षि सुदत्त उग्र तपस्वी, करुणावतार, दयासागर, प्राणिमात्र के शुभाकांक्षी, धर्म की प्रतिमा और उपशम का पुंजीभूत रूप थे। धन्य थी वह धरा, धन्य था वह ग्राम-नगर और धन्य था वह वन, जहाँ उनके चरण पड़ते थे। साथ ही वे प्राणी भी धन्य-धन्य थे, जो उनका दर्शन करते और उनकी वाणी को सुनते। ये मुनि पहले तो मात्र एक राज्य—कलिंग राज्य के ही स्वामी थे और अब तो उन्होने त्रिलोकी का स्वामित्व पा लिया था। देवजन भी उनकी वन्दना करना अपना सौभाग्य मानते थे। धन्य संयम, धन्य चारित्र और धन्य निर्ग्रन्थ धर्म का आलोक!



२

मालव राज्य का अपर नाम अवन्ती भी है। इस देश की राजनगरी उज्जयिनी कहलाती है। यहाँ की समृद्धि और शोभा अद्वितीय है। यह देश उर्वर है। इसलिए यहाँ के किसान धरती से सोना उगाते है। दुधारू गायो के गोकुलो के कारण यहाँ मानो दूध की नदियाँ बहती है। यहाँ के लोग इतने अतिथि-प्रेमी हैं कि राह चलते और बिना जान-पहचान वाले पथिक को भी रोक कर दही, भात और खीर का भोजन कराते हैं। यहाँ के पशु भी तृण-घास की जगह धान्य खाते है।

यहाँ के श्रेष्ठियो की तो बात ही क्या ? वे तो धरा के साक्षात कुबेर है। रत्न, स्वर्ण, मणि-मुक्ता के ढेर इनके कोषो में ऐसे लगे रहते हैं, जैसे किसानो के कोठारो मे गेहूँ, जौ, चना, मक्का आदि की राशि रहती है। इन व्यापारियो का यश दूर-दूर के देशो मे ख्यात है। यहाँ के वास्तुकार पत्थर मे प्राण फूंकते हैं। मालव देश के मजदूर भी बड़े परिश्रमी है। सभी सुखी, सन्तुष्ट और दीनता से रहित है।

ऐसे मालव देश की राजधानी अथवा राजनगरी सब नगरों में उसी तरह शोभित है, जैसे चन्द्रमुखी कान्ता के मस्तक पर भ्रू मध्य के ऊपर बिन्दी शोभित होती है। राजधानी अथवा राजनगरी उज्जयिनी की शोभा स्वर्गनगरी अलकापुरी की कल्पना को साकार करती है।

यहाँ की नारियाँ पति के अनुकूल रहने वाली और पतिव्रताएँ है। पुरुष कर्तव्यनिष्ठ है और पुत्र माता-पिता के आज्ञाकारी तथा उनका सम्मान करने वाले हैं। प्रजा राजभक्त और राजा प्रजा-वत्सल है।

नगरी के चारो ओर विस्तृत, विशाल और हरे-भरे उद्यान है। इसके मध्य निर्मल नीर मे भरे सरोवर है। इससे भी अधिक यहाँ जीवनदायिनी सदानीरा क्षिप्रा बहती है। यह अपने जीवन-दान से सभी को तृप्त करती है। इसके प्रस्तरनिर्मित और मणि-खचित घाटो का सौन्दर्य बड़ा ही मनोहारी है। इस सरिता के किनारे—नगरी से दूर जो वन है, वहाँ हाथी, बाघ, हरिण, आदि वन्य पशु स्वच्छन्द विचरण करते है। दोनो किनारो के ये वन शाल, अश्वकर्ण, बाँस, धव, कुटज, अर्जुन, अशोक, देवदारु, ताल, तिनिश, विल्व, सप्तपर्ण, तिलक, कर्णिकार, आम आदि के अनेको वृक्ष से पूर्ण और सघन है। फल-फूल और कन्द-मूलो की तो यहाँ कमी ही नही है।

उज्जयिनी के राजपथ चौड़े और साफ-सुथरे थे। इनके दोनों ओर छायादार वृक्ष थे। अत. इन पर चलने वाले पथिक अपनी यात्रा मे धूप-छाँह का अनुभव उसी तरह करते थे, जैसे मनुष्य जीवनयात्रा मे सुख-दु ख का अनुभव करता है।

हर वर्ग के अलग-अलग आवास-क्षेत्र तयवा मुहल्ले थे। श्रेष्ठीनिवास मे लक्षाधिपति, कोटीश्वर और इनसे भी बड़े श्रेष्ठियो के भव्य और झिलमिलाते कई-कई खण्डो के भवन थे। विप्रवीथी मे कर्मकाण्डी और वेदान्ती ब्राह्मण रहते थे, जो अपने यज्ञयाग मे ही जीवन की सार्थकता समझते थे। इन्ही मे वाममार्गी साधको का भी एक अलग आवास क्षेत्र था, जो भोग को ही

अपनी जीवन-यात्रा का लक्ष्य मानकर, मास-सेवन, बलियज्ञ और सुरा-सुन्दरी मे आकण्ठ डूबे रहते थे। इनका प्रभाव अन्य भोग-वादी लोगो पर भी थोडा-बहुत था।

इसी तरह काष्ठकार, शिल्पी, चित्रकार, मजदूर, मार्त आदि के अलग-अलग आवास-क्षेत्र थे। इन सभी के घर सुन्दर स्वच्छ, लिपे-पुते और आकर्षक थे। आवास-क्षेत्रो की तरह उज्जयिनी मे हर वस्तु के अलग-अलग पण्याहार [बाजार] थे। मिष्टान्न वीथी मे पक्तिवद्ध मिष्टान्न विपणियाँ ऐसी सजी रहती थी कि देखते ही मुँह मे पानी भर आता था। दूध के बने मिष्टान्न रजतथालो मे और वेसन के स्वर्ण-थालो मे सजे रहते थे। रत्नचौक मे आभूषण विक्रेताओं की विपणियाँ थीं। श्रेष्ठि परिवारो की महिलायें हाथीदाँत की बनी पालकियो मे बैठकर रत्न और स्वर्ण के आभूषण खरीदने आती थी।

इसी तरह फूलचौक मे पुष्पाभरणो की पक्तिवद्ध विपणिय थी और इसी तरह ताम्र, कास्य, घृत, तैल, ताम्बूल, गोरस और फलादि के अलग-अलग पण्याहार थे।

सब मिलाकर मालव राज्य और इस राज्य की राजनगरी उज्जयिनी सुख समृद्धि और सौन्दर्य का आगार थे।

इस देश के यशस्वी शासक थे राजा यशवघुर। ये बड़े ही शूर-वीर, प्रतापी, मर्यादापालक और प्रजावत्सल थे। ऐसे सुशासक को पाकर मालव की प्रजा गर्व का अनुभव करती थी। इनका राज सद्मालय इन्द्रभवन जैसा दर्शनीय और सुन्दर था। यह राजभवन मणिखचित, रत्नजटित और सुवर्णमडित था। भवन के भीतर ही विशाल भवन वाटिका थी; जो पुष्पपादपो, सफल वृक्षो, लता-मण्डपों और जलविहार कुण्डो से शोभित और मनोरम थी।

राजा यशवन्धुर का मन्त्री बुद्धिमान, दूरदर्शी और कुशल प्रशासक था। धनुष और बाण की तरह, जल और कमल की तरह राजा और मन्त्री का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध था। राजा न्याय से और मन्त्री उपाय से राजकाज करते थे।

महाप्रतापी और ऐश्वर्यसम्पन्न मालवनरेश यशवन्धुर के एक-मात्र पुत्र थे, यशोध। राजपुत्र यशोध गृहदीप, वंशभास्कर और क्षात्र तेज के साक्षात रूप थे। ये बहत्तर कलाओ मे निपुण और कलापुंज थे। वे वीर तो ऐसे थे कि शत्रु उनके नाम से ही थर्राते थे। राजकुमार यशोध का रूप भी कामदेव जैसा था। यही मालव के भावी नृपति थे। राजा यशबंधुर ने इनका विवाह अजितांग राजा की पुत्री चन्द्रमती के साथ किया था।

युवराज यशोध और युवराज्ञी चन्द्रमती मे अतिशय प्रीति थी। युवराज्ञी चन्द्रमती इतनी सुन्दर थी कि मानो, कामदेव की युक्ति ही हो अथवा काम की दीप्ति, काम की शक्ति, और उसकी बाण-पंक्ति हो। कालान्तर मे मालव-नरेश यशवंधुर के निधन के बाद युवराज यशोध मालव के राजसिंहासन पर बैठे। उज्ज-यिनी मे बडा भारी उत्सव मनाया गया। अब युवराज्ञी चन्द्रमती मालवेश्वरी थी।

राजा यशोध का शासन भी उनके पिता यशवंधुर के शासन की तरह सुशासन ही था। राजा-प्रजा के सम्बन्ध तो अच्छे थे ही, राजा-रानी का दाम्पत्य जीवन भी बहुत सुखी था। यदि राजा यशोध चन्द्र थे तो महारानी चन्द्रमती उनकी चन्द्रिका अथवा ज्योत्स्ना थी।

कालान्तर मे रानी चन्द्रमती ने उसी तरह एक पुत्र को जन्म दिया, जैसे विद्या विवेक को देती है। अथवा राजकुमार का जन्म चन्द्रमती की कुक्षि से उसी प्रकार हुआ, मानो यौवन रूपी वृक्ष

से सुरभित पुष्प उत्पन्न हुआ हो। महाराज यशोध ने पुत्र का बडे समारोह के साथ जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम अपने नाम के ध्वनि-साम्य पर यशोधर रखा।

राजकुमार यशोधर का पालन-पोषण पाँच धाये करती थी और अनेको दासियाँ भी उसकी सेवा के लिए थी। द्वितीया के चन्द्र की तरह चन्द्रमती का लाडला यशोधर दिन-प्रतिदिन बढने लगा।

कालान्तर मे कुमार यशोधर ने भी बहत्तर कलाओ मे योग्यता प्राप्त की। वह शस्त्र-शास्त्रो और रूप-गुणे मे ऐसा था कि मानो साक्षात क्षत्रियधर्म एक योद्धा का रूप धारण कर उपस्थित हुआ हो। राजकुमार यशोधर पुण्यो के पुंज, कलाओ के समूह और कुलभूषण तथा यश के निधान थे। वे शत्रुओ को नष्ट करने के लिए वज्र के रूप मे अवतरित हुए थे।

यशोधर जैसे पुत्र को पाकर रानी चन्द्रमती अपने पुत्रवती होने पर गर्व करती थी। अब तो रानी चन्द्रमती की यही एक कामना थी कि मेरे मदन-से पुत्र के लिए रति-सी सुन्दर पुत्रवधू आ जाये। यशोधर नगर-भ्रमण करते थे और उनके घूमने पर पाबन्दी लगाने का यही एक उपाय था कि दाम्पत्य-रस की मृदुल बेड़ियाँ उनके पैरों मे डाल दी जायँ। नरेश यशोध भी इस प्रतीक्षा मे थे कि कही से अनुकूल प्रस्ताव आये तो वे पुत्र यशोधर का विवाह कर दें।

समय बीत रहा था कि युवराज यशोधर के विवाह का दिन भी आ ही गया। नित्य की तरह एक दिन मालवनरेश यशोध की राजसभा जुडी थी। उनके सिंहासन के पीछे रत्नजटित सिंहासन पर मालवेश्वरी भी विराजमान थी। उनके आगे मुक्ता-लड़ियो की

यवनिका पड़ी थी। इससे वे समस्त राजसभा को देख सकती थी, पर उन्हे कोई नही देख सकता था।

महाराज यशोध के निकट ही एक स्वर्णिम आसन पर युवराज यशोधर भी बैठे थे। राजसभा खचाखच भरी थी। विभिन्न विभागो के अमात्यो, सभासदो तथा अतिथियों के अतिरिक्त प्रजा-वर्ग के लोग भी उपस्थित थे। इसी समय राजकीय चिन्हो से भूषित, अनेक सेवको तथा वाहनो से परिवृत एक प्रभावशाली व्यक्ति राजसभा मे उपस्थित हुआ।

राजा यशोध ने उपस्थित व्यक्ति की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा तो उस व्यक्ति ने अत्यन्त भद्रता व शिष्टता के साथ राजा का अभिवादन किया, और फिर विविध मूल्यवान उपहारो की भेंट सामने रखकर राजा को अपना परिचय दिया—

"महाराज! मैं विदर्भ देश की राजधानी वैराट नगर से आया हूँ। वहाँ विमलवाहन नाम के यशस्वी, नीतिनिपुण और प्रतापी शासक हमारे राजा है। मै सहस्रमति नाम का उनका प्रधानमन्त्री हूँ।"

राजा यशोधर ने भी मन्त्री की ओर आदरपूर्वक देखा व आसन ग्रहण करने का सकेत किया।

आसन पर स्थित हो विविध कुशल-प्रश्नो के वाद वाद मन्त्री सहस्रमति ने अपने आने का प्रयोजन बताते हुए कहा—

"राजन्! महाराज विमलवाहन की अनिंद्य सुन्दरी रानी श्यामादेवी लक्ष्मी और सरस्वती की युगलमूर्ति है। उनकी अगजा एक कन्या है नयनावली।

"नयनवली सगीत—नृत्य आदि विविध कलाओ मे पारगत परम सुन्दरी कन्या है। अभी उसकी आयु सोलह वर्ष की है। एक

वार महाराज ने राजसभा मे राजकन्या के योग्य वर की च
की तो वहाँ उज्जयिनी के अनेक प्रमुख व्यापारी भी उपस्थि
थे । उन्होने आपके राजकुमार यशोधर के रूप-गुण-कलाओ
जो वर्णन किया तो महाराज विमलवाहन उससे अत्यधिक प्र
व प्रभावित हुए और मुझे आपकी सेवा मे भेजा है ।

"राजन् ! यदि राजकन्या नयनावली का पाणिग्रहण रा
कुमार यशोधर के साथ सम्पन्न हो जाये तो रति-मदन की यु
जोड़ी साकार प्रतीत होगी । इसमे मालव और विदर्भ की म
परम्परा तो सुदृढ होगी ही, पर मणि-काचन सयोग भी
होगा ।

"मैं महाराज विमलवाहन की ओर से यह मगल-प्रस्ता
लेकर आपश्री की सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ ।"

राजा यशोध ने सहज रूप से ही यह विवाह-प्रस्ताव स्वीका
करते हुए विदर्भ मन्त्री से कहा—

"मन्त्रिवर ! कौन ऐसा मूर्ख होगा जो घृत-दुग्ध के मध्य सा
भूत शर्करा का प्रवेश न चाहता हो ? मुझे यह प्रस्ताव सौ व
स्वीकार है । यदि राजा विमलवाहन यशोधर को जामाता बना
चाहते हैं तो मैं और महारानी चन्द्रमती—दोनो ही राजकन्
नयनावली को अपनी पुत्रवधू बनाने मे प्रसन्नता अनुभव करेंगे ।

'महाराज यशोध की जय' के नाद के साथ मन्त्री सहस्रम
ने तुरन्त पान, पूगीफल तथा नारियल देकर विमलवाहन रा
की पुत्री नयनावली का वाग्दान पक्का कर दिया ।

फिर तो पण्डित-पुरोहितो ने तुरन्त ही विवाह का मुहूर्त भ
निकाल दिया । मुहूर्त-तिथि लेकर मन्त्री अपने नगर पहुँचा औ
शुभ सवाद सुनाने के बाद उसने राजा विमलवाहन से कहा—

"हे राजन् राजकन्या नयनावली और राजकुमार यशोधर का सम्बन्ध निश्चित हो चुका है। दोनो की जोडी वडी अच्छी रहेगी। अब आप कन्या सहित उज्जयिनी जाइये और युवराज यशोधर को कन्यादान देकर यशोभागी बनिये।"

राजा विमलवाहन ने अपने मन्त्री की बात हृदयगम की और उज्जयिनी चलने की तैयारियाँ शुरू कर दी। उसने अपने सभी वंधु-बाधव, परिवार के लोग, सभासद, मन्त्री तथा दिव्यभोगो का उपभोग करने वाला अन्त पुर एव घोडे, हाथियो, रथो-सुभटो को एकत्रित किया। फिर शुभ शकुन देखकर वैराट नगर से उज्ज-यिनी को प्रस्थान कर दिया। इस प्रकार कुछ दिनों की यात्रा के बाद राजा विमलवाहन सुकन्या नयनावली और राजसमाज सहित उज्जयिनी पहुँचा तथा नगरी के बाहर नन्दनवन नामक विशाल उद्यान मे ठहरा।

राजा विमलवाहन के आगमन का समाचार वनपाल ने राजा यशोध को दिया। राजा यशोध ने नगरी को सजाने का आदेश दे दिया। उज्जयिनी नववधू-सी सजने लगी। जगह-जगह प्रवेश-द्वार बने, रत्नो की झालरो से युक्त स्तम्भ ठौर-ठौर गाडे गये। बहुत ही भव्य और मनोहारी विवाह मण्डप बनाया, जो शताधिक स्तम्भो पर एक वितान को तान कर बनाया गया था।

बडे स्वागत के साथ राजा विमलवाहन का नगरी-प्रवेश हुआ। सब-के-सब अतिथि-भवनो मे ठहरे। फिर विवाह के लिए कन्या और वर—दोनो पक्षो के नर-नारी विवाह-मण्डप मे एकत्रित हुए। विवाह-मण्डप मन को लुभाने वाला था। वहाँ तरह-तरह के वाद्य बजने लगे। मृदगो की वाद्यध्वनि से तो मेघगर्जन का

भ्रम होता था। इसी तरह बाँसुरी, तुरही, बीन, पटह, वीणा और ढोलक आदि वाद्यो की मिली-जुली ध्वनियाँ मन को मस्त बना रही थी।

विलासिनी सुन्दर बालाएँ नृत्य करने लगी। कुछ कोकिल-कण्ठी ललित गीत गाने लगी। स्वस्ति-पाठ होने लगा। इस प्रकार दोनो पक्षो मे उत्साह और हर्ष का सचार हो रहा था। यह सब हर्षोत्साह का कार्य क्रम कई दिनो तक चला। फिर तो विवाह का दिन भी आ गया।

कुमार यशोधर के पिता यशोध और माता चन्द्रमती फूले नही समा रहे थे। कुमार यशोधर की वर-सज्जा होने लगी। उन्हें सुगन्धित जल से स्नान कराया गया। स्नानादि से निवृत्त हो कुमार ने बहुमूल्य और आकर्षक वस्त्रालकार धारण किये। जब वर-वेश मे यशोधर अश्वारूढ होकर मण्डप की ओर चले तो कर्पूर की धूल तथा कस्तूर की गध से भौरो का समूह अधा हो गया।

विवाह-मण्डप मे प्रविष्ट वर यशोधर को सबने देखा तो मन्मथ का भ्रम हो गया। यथासमय वे चौकी पर बैठे। उनके पार्श्व भाग मे राजकुमारी नयनावली भी सज्जित होकर बैठी।

पण्डितों ने मन्त्रोच्चारण किया। मगल-वचनो के बीच यशोधर ने नयनावली का पाणिग्रहण किया। अग्नि की साक्षी मे दोनो का विवाह सोल्लास सम्पन्न हो गया। राजा विमलवाहन और यशोध परस्पर सम्बन्धी बने। रानी चन्द्रमती सास बन गई और उन्हे देवकन्या-सी पुत्रवधू नयनावली मिल गई।

एक बार राजा यशोध स्नान करके दर्पण मे मुख देख रहे

दीख गया। श्वेत केश देख राजा चिन्तित हो उठे। उन्होंने सोचा 'जरा का दूत यह केश अब तो आ ही गया। फिर तो एक दिन बुढापे का पूरा अधिकार मुझ पर हो जायगा और मेरे समस्त केश श्वेत हो जायेंगे और समस्त अग भी शिथिल होगे। तब मैं सयम का पालन कैसे करूँगा ?'

इस तरह सोचते-सोचते राजा यशाध का हृदय वैराग्य से भर गया। उन्होने यशोधर को राज्यभार सौप सयम लेने का निश्चय कर लिया। निश्चय पक्का था। जो पक्का न हो वह निश्चय ही क्या ?

इस निश्चय के बाद राजा यशोध ने पुत्र यशोधर को राज-सिंहासन पर आसीन किया और फिर कामरूपी सर्प के दर्प का अपहरण करने वाले जैनधर्म के परम त्याग-मार्ग का अनुसरण किया।

अब रानी चन्द्रमती राजमाता बनी। नयनावली मालवेश्वरी बनी और यशोधर तो मालवेश्वर थे ही। सिंहासन पर बैठने के बाद तो यशोधर वस्तुत यशोधर बन गये। क्योंकि उनके शौर्य और पराक्रम का यश दूर-दूर तक फैल गया।

मालवपति यशोधर ने सिंहासनारूढ होने के बाद उद्दण्ड दुष्टो का दण्डनीति से दमन किया। उन्होने वार्ता विद्या (अर्थ-शास्त्र) द्वारा विपुल धन का सचय किया। सातो व्यसनो पर नियन्त्रण करने के साथ ही क्रोध, लोभ, माया और मान का भी नियमन किया।

राजा यशोधर विग्रह (युद्ध), सन्धान (सन्धि), यान (आक्र-मण, और स्थान, सशय तथा द्वैधीकरण आदि राजनीतिक गुणो मे विशेष दक्ष थे।

यद्यपि राजा यशोधर की हृदयेश्वरी और पटरानी नयनावली थी, पर उनके अन्तःपुर मे और भी अनेक रानियाँ थी। राजा यशोधर ने यद्यपि धर्म का अनुसरण करते हुए अपनी भोगवृत्तियं को सयमित किया था, किन्तु धीरे-धीरे विविध मादक भोज्य कामिनियो का स्नेह-पाश तथा नवयौवना नयनावली का मादक सौंदर्य राजा को पूरी तरह अपना दास बना चुका था। उनक ससार मात्र कामिनी मे ही सीमित हो गया। नयनावली की तर ही स्वच्छमती, हसमती और शुद्धमती आदि रानियाँ भी अप प्रियतम को रिझाने वाली कामकला-प्रवीण थी।

राजा यशोधर अपनी इन रानियो मे ऐसे आसक्त हो गये कि विलास में थोडी शिथिलता आने मे उन्हे दीर्घकालीन प्रवास जैस कष्ट होता था। भले ही उनके राज्य मे कही आग लगे, उपद्र हो, पर वे अपनी कामिनियो का सहवास नही छोड सकते थे।

कालान्तर मे यशोधर राजा पुत्रवान भी बने। उनके पुत्र व नाम 'गुणधर' रखा गया था। राजपुत्र गुणधर भी अपने पित यशोधर के समान रूपवान, यशस्वी और दुर्द्धर्ष योद्धा था।

राजा यशोधर को भोग-विलास से इतना अवकाश ही नह था कि शासन मे दिलचस्पी लेते। अत' अपनी इस विवशता क देख उन्होंने अपने जीवनकाल मे ही युवराज गुणधर को शासन भार सौंप दिया। अब प्रत्यक्ष रूप मे तो यशोधर ही मालव शासक थे, पर परोक्ष रूप मे गुणधर ही मालव का अधिपति था जिसे पिता के बाद प्रत्यक्ष मे मालवेश्वर बनना था, वह गुणध पिता के राजा होते हुए ही परोक्ष मालवेश्वर था।

इस प्रकार राज्य सचालन से निश्चिन्त होने के बाद नृ यशोधर नयनावली के अन्तःपुर की ओर ही देखते रहते। वे रान

दिन उसी के अक-पाश मे पडे रहते । अपने रूप की उज्जवल कान्ति वाली, श्याम घटा मे केश वाली और यौवन युगल के भार को उठाने वाली नयनावली के साथ रति-क्रीडा मे सतत डूबे रहते थे। काम की शक्ति को क्या कहे कि हाथी का मस्तक विदीर्ण करने वाले राजा यशोधर कामिनी नयनावली के सामने सदा नत रहते थे । वे उसी के साथ वनक्रीडा को जाते । वे सोचते कि ससार के सुखों का सार एक नारी ही है—असारे खलु ससारे सार सारगलोचना ।

रानी नयनावली भी अपने प्रियतम पर न्यौछावर थी । वह भी उनके क्षणिक वियोग मे आहे भरने लगती और सौ-सौ आँसुओ से रोती ।

□ □ □

यशोधर राजसभा मे बैठे थे। वे प्रत्यक्ष मालवपति थे, इसलिए पुत्र गुणधर को उत्तरदायित्व सौपने के बावजूद भी उन्हे राजसभा का सचालन तो करना ही पडता था । उनके पास ही दूसरे आसन पर युवराज गुणधर आसीन थे ।

राजा यशोधर का सभा सचालन मे मन नही लग रहा था। वे शीघ्र ही उठकर प्रिया नयनावली के पास जाना चाहते थे, पर तत्काल ही यौधेय देश के राजा मारिदत्त के विशेष दूत सभा मे आये । इसलिए राजा यशोधर को कुछ देर और रुकना पडा ।

यौधेय देश के दूतो मे से एक ने अपने देश, नगर और राजा का परिचय देते हुए इस प्रकार कहा—

"राजन् ! हम राजपुर नगर से आये है। यह नगर यौधेय देश की राजधानी है। यौधेय राज्य की प्रजा सब तरह से सुखी और सम्पन्न है। पूरे देश के मध्य मे ही अत्यन्त शोभाशाली

नगर राजपुर बसा है। यही नरराज मारिदत्त साम, दाम, दण्ड, भेद और पराक्रम के साथ बडी निपुणता से शासन करते हैं।

"हे मालवपति ! नृप मारिदत्त मे असाधारण विक्रम है। उनका हास्य बडा निर्मल है। वे विशाल वक्ष वाले और प्रचण्डबाहु है। शत्रु उनके नाम से थर्राते है।

"हे नरेश ! ऐसे सर्वगुणसम्पन्न यौधेय देश के राजा मारिदत्त अपनी बहन कुसुमावली का विवाह आपके पुत्र वीर शिरोमणि गुणधर के साथ करना चाहते है। यह विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर आप हमारे राजा, प्रजा और हमे कृतार्थ कीजिए।"

"इसमे क्या कठिन बात है ?" राजा यशोधर ने मारिदत्त के दूतो से कहा—"गुणधर का विवाह तो होना ही है और वह भी राजकन्या के साथ ही होगा। जो पहले आये सो सिर-माथे। कुसुमावली को अपनी पुत्रवधू बनाने मे हमे भी प्रसन्नता होगी। महाराज मारिदत्त की यशकीर्ति हमने सुनी है।"

बस, फिर तो विवाह पक्का हो गया और विवाह तिथि भी निश्चित हो गई। दोनो पक्ष बडी आतुरता से विवाह तिथि के निकट आने की प्रतीक्षा करने लगे। पर राजा यशोधर को अपनी प्रिया से मिलने की बड़ी शीघ्रता थी। विवाह की इस बातचीत मे तो वे और भी व्यग्र हो उठे। तुरन्त ही वे प्रिया नयनावली के अन्तःपुर की ओर चल दिये। पर वह तो वहाँ थी ही नही।

नयनावली अपने भवन उपवन मे थी। इस उपवन-उद्यान में एक सुन्दर सरोवर था। ताल, तमाल, हिन्ताल, मौलसिरी और चन्दनादि के वृक्ष, साथ ही इसमे विविध लतामण्डप, लतागुल्म, वीथी और चौक थे। हरी घास के बड़े-बड़े चौगन थे। चौगान की शीतल-सघन छाया मे नाना जलचर, नभचर, विहग और जीव

यहाँ विचरण करते थे। यहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। इसी मनोरम उद्यान मे नयनावली थी और उससे मिलने के लिए यशोधर का तारुण्य विकल हो रहा था। वह अपनी सखियो से घिरी वतरस मे निमग्न थी। आड मे खडे यशोधर प्रिया की बातों को चोरी से सुन रहे थे।

इस समय नयनावली के अंगो पर छहों ऋतुएँ वास कर रही थी। विविध पुष्पो के मनोरम और कलापूर्ण आभूषण धारण किये मूर्तिमती नयनावली उद्यानश्री को देख रही थी।

एक दासी ने कहा—"महारानी ! इधर आकर देखें, आकाश मे उडती सारसो की यह पंक्ति कैसी भली लग रही है।"

"हाँ है तो मनोरम !" ऊपर देखते हुए नयनावली ने कहा—"पर मैं श्रमित हूँ। आओ, यहाँ माधवी लतामण्डप मे विश्राम करें।"

इतना कह नयनावली लतामण्डप मे रखी स्फटिक-शिला पर बैठ गई। सखियो ने उसे चारो ओर से घेर लिया। इसी समय एक चेटी ने आड़ मे खड़े राजा यशोधर को देख लिया। उसने मन्द मुस्कान के साथ मालवेश्वरी नयनावली से कहा—

"अरे, वह कौन है ?"

नयनावली ने कमल-सी आँखे संकेतित स्थान की ओर उठाकर देखा। उसकी आँखे लाज और चाह से भर गईं। उसने मुस्करा-कर कहा—"आर्यपुत्र ही तो है। अब क्या करूँ ?"

यशोधर ने भी यह सुना और वे धीरे-धीरे आगे आये तथा प्रिया से रस लेने के विचार से अपनी दाईं आँख मलने लगे और कष्ट का प्रदर्शन करते हुए बोले—

"अरे मरा मैं ! ओह ! कैसी पीडा ?"

नयनावली लपककर आगे आई और बोली—

"देखूँ तो। आँख मे रजकण गिर पडा होगा।"

यह कह नयनावली ने प्रिय का सिर अपनी जघा पर रख लिया और चेटी को आदेश दिया—

"जा, जल्दी सुखोदक ले आ।"

चेटी दौडकर सुखोदक ले आई। दूसरी दासियाँ शय्यागृह मे व्यवस्था करने चली गई थी। क्योकि भवन और भवन-उद्यान मे ज्यादा दूरी नही थी। जब चेटी सुखोदक ले आई तो यशोधर ने झूठ-मूठ को नेत्र प्रक्षालन किया तथा फिर स्वस्थ होकर चाह भरी नजरो से प्रिया को देखने लगे।

नयनावली ने कहा —"आर्यपुत्र! अब तो पुत्र गुणधर का भी विवाह होने वाला है पर आपकी भावनाएँ अभी कम क्यो नही होती ?"

एक-एक करके दासियाँ जा चुकी थी। इसलिए एकान्त देख रानी नयनावली ने राजा यशोधर से यह बात कही थी। यह अयाचित बात सुन राजा ने रानी से कहा—

"तो क्या तुम्हारी चाह-भावना मेरे लिए नही है ? गुणधर के विवाह से हमारी चाह का क्या सम्बन्ध है ?"

नयनावली ने कहा—"स्वामी! आपके लिए मेरी चाह तो दिन-दूनी रात-चौगुनी बढती ही जाती है। आपके बिना मैं अपने जीवन की कल्पना भी नही कर सकती। पर जब घर मे पुत्रवधू आ जाए तो माता-पिता को अपना व्यवहार सयमित करना चाहिए। इसीलिए हमारी चाह का गुणधर के विवाह से सम्बन्ध है।"

तभी दासी आ गई। बात बीच मे ही रुक गई। दासी ने कहा—

"शयनगृह मे सुखशय्या तैयार है।"

नयनावली और यशोधर शयनगृह की ओर चले गये।

× × ×

इधर युवराज गुणधर के विवाह की तिथि आई तो यथा-तिथि, यथासमय उसका विवाह यौधेयनरेश मारिदत्त की बहन कुसुमावली के साथ सोल्लास सम्पन्न हो गया। गुणधर के श्वसुर नही थे। इसलिए भाई ने ही बहन का कन्यादान किया था। अब गुणधर मारिदत्त राजा के बहनोई थे और वह उनका साला था।

युवराज्ञी कुसुमावली राजपुर से उज्जयिनी आई। भाई मारिदत्त धैर्यवान होकर भी फूट-फूटकर रोये। उन्हे अपनी यह अनुजाता कुसुमावली बहुत प्रिय थी पर बहन या बेटी का घर तो उसके पति का घर ही होता है, सो कुसुमावली अपने घर आ गई।

कुसुमावली की आयु जितनी थी, वह उससे कम की लगती थी। उसका रग तप्त सुवर्ण के समान देदीप्यमान था। उसकी भाव-भगिमा भी बडी मोहक थी। शरीर उठानदार और कद कुछ लम्बा था। उसकी देहकान्ति को देखकर ऐसा लगता था, मानो रक्त अग से फूटकर बाहर निकलना चाहता है। लावण्य और स्वास्थ्य की कोमलता का उसके शरीर मे कुछ ऐसा साम-जस्य था कि किसी भी तरह युवराज्ञी कुसुमावली की सुषमा का वर्णन नही किया जा सकता था।

युवराज के विवाह के बाद तो राजा यशोधर को कभी-कभी रानी नयनावली का यह कथन याद आता था कि 'पुत्र गुणधर का विवाह होने वाला है, पर अभी आपकी चाह कम क्यो नहीं होती ?' वे जब भी इस कथन पर विचार करते तो मन मे वैराग्य भाव आता पर यह वैराग्य हवाई-वैराग्य अथवा क्षणिक वैराग्य ही था सो आता और कपूर की तरह उड भी जाता। मूल बात यह कि राजा यशोधर भोगो से अभी विरक्त नही थे। पर उनके हृदय मे विरक्ति का बीज अवश्य था, ऐसा उनके कभी-कभी वैराग्य की ओर उन्मुख होने से प्रतीत होता था।

राजा यशोधर, रानी नयनावली, युवराज गुणधर और युवराज्ञी कुसुमावली—सब अपने-अपने क्षेत्र मे विचरते हुए समय के साथ बीत रहे थे।



३

पूर्णिमा की सध्या थी। पूर्णेन्दु उदित हुआ । धरा का कण-कण रजत-ज्योत्स्ना मे डूबा था। राजा यशोधर अपने निजी कक्ष से उठकर नयनावली के शयनकक्ष की ओर जा रहे थे। अब सध्या भी रात मे बदल चुकी थी ।

राका रजनी मे उदित सोलह कलाओ से युक्त राकेश को देखकर ऐसा लगता था, मानो अधकार समूह को खडित करने के लिए चक्र का उदय हुआ हो। या वह चन्द्र रात्रिवधू के मस्तक का टीका ही हो। या यो कहे कि स्वेच्छाचारिणी स्त्री को रोकने की बाधा ही चन्द्र का रूप रखकर उदित हुई थी।

उस चन्द्र चन्द्रिका मे सब कुछ ऐसा दिखाई देता था मानो सभी कुछ रजत से निर्मित हुआ हो। यशोधर ऐसे शीतल आमोद-दायक वातावरण में अपनी प्रिया के भवन के निकट पहुंचे। उस भवन का शिखर मणियो से जडा हुआ था। नित्य की तरह आज भी भवन मे नृत्य-सगीत हो रहा था। उस रमणीय भवन के आठ खण्ड थे। आठवें खण्ड पर रानी नयनावली का शयनकक्ष था ।

इस अन्तःपुर के प्रथम खण्ड की भूमि शुद्ध स्फटिक मणियों से रचित, अति उज्ज्वल और आकाश-सी विशुद्ध थी। उसकी द्वितीय भूमि मोतियो से जडी हुई थी। इसी तरह तृतीय भूमि

है।" रूठने का अभिनय करते हुए रानी ने कहा—"आप इतनी देर मे आते है कि इस छोटी सी रात को और भी छोटा कर देते हैं। आपने कभी सोचा ही नही, कि आपके विना मेरे पल कैसे बीतते है।"

"एक-एक पल एक-एक युग के बराबर। यही न?" राजा यशोधर ने कहा—"प्रिये! मेरे इन प्राणो को तो तुमने अटूट नेह के तारो से बाँध रखा है। कही भी हो, खिचकर यही चले आते है। बस, अब तो विधिवत गुणधर का राज्याभिषेक कर दूँ, फिर तो अवकाश ही अवकाश है।"

रानी कुछ नही बोली। वह शीघ्र ही राजा से पिण्ड छुडाकर अपने प्रेमी के पास जाने को आतुर थी। पर राजा की बातें बन्द नही होती थी। उसकी बाते बन्द हो तो वह सोये और जब वह सोये तो रानी अपने प्रेमी के पास अभिसार करने जाए। आज देर कुछ अधिक हो गई थी। आज दिन मे भी वह अपने प्रेमी से मिल नही पाई थी, इसलिए और भी चिंतित हो रही थी। उसे यो सोच-विचार मे मौन देख राजा यशोधर ने उससे कहा—

"लेकिन तुम क्या सोच रही हो?"

"कुछ नही।" चौककर रानी नयनावली ने कहा—"कोई गा रहा है कि यह रात विश्राम का सदेश लाई है। मैं सोच रही थी, क्या जीवन मे कोई विश्राम भी कर पाता है। हाँ, जीवन के अन्त की बात दूसरी है।"

"अच्छा तो तुम सोना चाहती हो। मैं समझ गया रानी!" यशोधर राजा ने कहा—"एक दिन तुम इस नीद को अपनी सौत बता रही थी। सो वह तुम्हारी सौत मेरे लिए तो आज भली बन गई। क्योकि मुझे नीद नही आ रही।"

अनुरक्ता समझते थे, वह आज ऐमी पुंश्चली दिखाई देगी, ऐसा वे सोच भी नही सकते थे ।

रानी शयनकक्ष मे बाहर निकल गई तो दबे पॉव उसके पीछे-पीछे नग्न खड्ग लिये राजा यशोधर भी चल पड़े ।

भवन के आठो खण्डो को पार करते हुए रानी महालय के पीछे एक छोटे से मकान मे पहुँची । उसमे एक कुबड़ा दास सो रहा था । राजा यशोधर ऐसी आड मे खडे हो गये कि उन्हे सब कुछ दीखता रहे । रानी ने चरण सहलाकर कुबडे को जगाया । कुबडा चौककर उठा और आग्नेय नेत्रो से ऐसे देखने लगा जैसे कौआ हसिनी को देखता है अथवा कोई असुर देवी को घूर रहा है ।

उस कुबडे का रूप अत्यन्त घिनौना और मन मे ग्लानि पैदा करने वाला था । उसका वक्ष ऐसा कठोर और उभरा हुआ था मानो पीठ को उलटा करके वक्ष बना दिया गया हो । वह कई अगो से टेढा था । उसके दॉत बडे-बडे और पीले थे । मानो हल्दी की गॉठे दॉतो के स्थान पर लगी हो । ऐसा कुरूप कुवड़ा हसिनी जैसी रानी नयनावली को लुभाने वाला था । सिह की जूठन खाने वाले उस शृगालरूपी कुवडे ने रानी से क्रुद्ध होकर कहा—

"दुष्टे ! तू अब आई है । ठहर, मैं तेरी अभी खबर लेता हूं ।"

यह कह उसने रानी का जूडा पकडा और उसे डण्डे से पीटने लगा । रानी उसके चरण पकडकर रोने लगी और बोली—

"प्राणधन ! पहले मेरी सुन तो लो । मुझ निरपराधिनी को मत मारो ।"

करके उसका कल्याण ही करती हैं। मुझे भी आज ससार की नाटकीयता दीख गई।'

यह सोच राजा उल्टे पाँव अपने शयनकक्ष मे लौट आये और शय्या पर लेटकर रानी के विषय मे पुन-पुन. सोचने लगे। वे सोचने लगे—'यह सिलसिला जाने कब से चल रहा था ? पर वाह रे नारी ! तू कितनी चतुर होती है। यदि आज मै यो प्रत्यक्ष न देख पाता तो कभी भी नही सोच सकता था कि मेरी रानी ऐसी भी हो सकती है। मेरे बिना एक पल का वियोग भी नही सह सकती थी। सौ-सौ आँसुओ मे रोती थी। कैसी सफल अभिनेत्री होती है यह नारी। कहने वालो ने सच ही कहा है कि आकाश मे उडते पक्षी और जल मे तैरती मछलियो के पदचिन्ह देखे जा सकते है, पर नारी के हृदय का भेद नही जाना जा सकता।'

राजा यशोधर ने स्त्रियो की सच्ची घटनाएँ पढी-सुनी थी—दुश्चरित्रा स्त्रियो की घटनाएँ। आज वे सब याद आने लगी।

'निर्मलनीरा गगा मे चन्द्र का प्रतिबिम्ब भी दिखाई देता है और चाण्डाल का भी। गुण-दोष का सग-साथ सदा रहता है। इसी तरह वृक्ष की एक शाखा पर हस भी बैठता है और काक भी। कमल पर सूर्य रश्मि का आघात भी होता है और दादुर के पग का भी। कैसा गुण-दोषमय यह ससार है।'

महाराज यशोधर पुन पुनः सोच रहे थे। उन्होने सोचा, 'स्त्री सध्या के समान अपना रग अर्थात् अनुराग छोड देती है। वह धनुष की लकडी की तरह गुण (डोरी) से युक्त होकर टेढी—कुटिल भी होती है। इस नारी ने बडो-बडो को नष्ट किया है।

राजा यशोधर रक्ता के चरित्र पर विचार करने लगे—'एक नदी के सगम पर एक दुष्ट स्वभाव की, वैरिणी, उपकारहीन अथवा कृतघ्न, स्वैरिणी अथवा स्वेच्छाचारिणी रक्ता नाम की स्त्री रहती थी। उस अधम ने पगुलमाली नामक अपने प्रेमी के लिए अपने पति अयोध्यानरेश देवरति को नदी मे फेक दिया था। हाय ! स्त्री दुस्साहस करने मे पुरुप से कितनी आगे है !'

राजा यशोधर यह सब सोच ही रहे थे कि उन्होने पैरो की आहट सुनकर जान लिया कि पुश्चली नयनावली आ गई। अतः वे आँखे बन्दकर करवट बदलकर कपट-नीद मे सो गये। फिर नयनावली रानी आकर उनके वक्ष पर बाहे रख उन्ही पर आश्रित होकर लेट गई। ऐसा लगा मानो किसी मूर्ख ने विद्वानो की सभा का सम्मान किया हो। अथवा मानो नयनावली रूपी शाकिनी मृत रूप राजा यशोधर के शव का स्वाद लेने आई हो।

काम मे रमने का परिणाम राजा यशोधर आज स्पष्ट देख रहे थे। जैसे खुजली खुजाने मे पहले सुख मिलता है और बाद मे दुःख, उसी प्रकार रतिरमण मे पहले कुछ क्षणो का थोड़ा-सा सुख और बाद मे महाकष्ट होता है। फिर भी मनुष्य दुःखरूप सुख के पीछे भागता है और मोक्ष जैसे अनन्त सुख के बारे मे सोचता भी नही।

ससार के सुखो मे पागल बना मनुष्य उनमे छिपे दुखो को भी हँसकर सहता है और फिर बाद मे रोता है। जिनमे हम सुख देखते हैं, उनमे कही भी तो सुख नही है। आभूषणो मे देह-दमन का दुःख स्पष्ट है। जब प्राणी खुश होकर नाचता है तो अन्त मे क्लान्ति और थकान का दुःख पाता है। कहाँ तक कहे, सच तो यही है कि इन्द्रिय-सुख एक महान दुःख है।

'कितनी ही स्त्रियों ने अपनी कुटिलता परिचय दिया है। गोपवती की ही बात ले लो। उसने अपनी सौत का सिर काट और अपने पति के सम्मुख रखकर कहा कि ले इसे खा। पति भयभीत होकर जब भागने लगा तो दुष्टा गोपवती ने उसका भं प्राणान्त कर दिया।

'ऐसी ही दुष्टा वीरवती थी। वीरवती ने अपने उपपति अंगारक नामक चोर, जो शूली पर चढा था, को अपना गाढा लिंगन दिया। पर अगारक स्त्री की माया से परिचित हो गय था सो उसने चुम्बन के आदान-प्रदान के समय वीरवती क अधर—नीचे का होठ काट लिया।

'पर वाह रे पतिघातिनी वीरवती! अपना होठ कटा मुं ढककर घर आई और हल्ला मचाया कि मेरे पति सुदत्त ने मेर अधर काट लिया है। वेचारा सदाशय सुदत्त सकट मे फँस गया वह अपराधी के रूप मे राजा के सम्मुख लाया गया। पुरवासं उसका न्याय-निर्णय देखने इकट्ठे हो गये।

'साँच को आँच नही होती, सो सुदत्त को मुक्त किया गया जिस समय शूली पर चढे अंगारक ने वीरवती का अधर काटा था, उस समय एक पथिक ने छिपकर यह कार्य देखा था। जब सुदत्त राजसभा मे ले जाया गया तो उस पथिक ने सुदत्त को सद्गुणी और निरपराध सिद्ध किया। उसने मृत अंगारक के मुख मे लगा वीरवती का अधर सबको दिखाया था। वीरवती का अधर काटने के बाद अंगारक चोर शूली पर ही मर गया था, इसलिए वीरवती का अधर उसके दाँतो मे भिचा रह गया था।

'रक्ता नाम की स्त्री भी गोपवती और वीरवती की तरह ही दुष्टा थी।'

राजा यशोधर रक्ता के चरित्र पर विचार करने लगे—'एक नदी के सगम पर एक दुष्ट स्वभाव की, वैरिणी, उपकारहीन अथवा कृतघ्न, स्वैरिणो अथवा स्वेच्छाचारिणी रक्ता नाम की स्त्री रहती थी। उस अधम ने पगुलमाली नामक अपने प्रेमी के लिए अपने पति अयोध्यानरेश देवरति को नदी मे फेक दिया था। हाय ! स्त्री दुस्साहस करने मे पुरुप से कितनी आगे है !'

राजा यशोधर यह सब सोच ही रहे थे कि उन्होने पैरो की आहट सुनकर जान लिया कि पु श्चली नयनावली आ गई। अतः वे आँखे बन्दकर करवट बदलकर कपट-नीद मे सो गये। फिर नयनावली रानी आकर उनके वक्ष पर बाहे रख उन्ही पर आश्रित होकर लेट गई। ऐसा लगा मानो किसी मूर्ख ने विद्वानो की सभा का सम्मान किया हो। अथवा मानो नयनावली रूपी शाकिनी मृत रूप राजा यशोधर के शव का स्वाद लेने आई हो।

काम मे रमने का परिणाम राजा यशोधर आज स्पष्ट देख रहे थे। जैसे खुजली खुजाने मे पहले सुख मिलता है और बाद मे दुःख, उसी प्रकार रतिरमण मे पहले कुछ क्षणो का थोड़ा-सा सुख और बाद मे महाकष्ट होता है। फिर भी मनुष्य दुःखरूप सुख के पीछे भागता है और मोक्ष जैसे अनन्त सुख के बारे मे सोचता भी नही।

ससार के सुखो मे पागल बना मनुष्य उनमे छिपे दुखो को भी हँसकर सहता है और फिर बाद मे रोता है। जिनमे हम सुख देखते हैं, उनमे कही भी तो सुख नही है। आभूषणो मे देह-दमन का दुःख स्पष्ट है। जब प्राणी खुश होकर नाचता है तो अन्त में क्लान्ति और थकान का दुःख पाता है। कहाँ तक कहे, सच तो यही है कि इन्द्रिय-सुख एक महान दुःख है।

आज राजा यशोधर का मन पूरी तरह वैराग्य से भरा हुआ था। वे सोच रहे थे कि अब तो मैं निश्चय ही इस झूठे संसार-सुख को छोड़ दूँगा और धर्म की नाव पर वैठकर भवसागर को पार करूँगा। मैं अव तप करूँगा। मुनियो के उस व्रत को धारण करूँगा जिसके प्रभाव से नाग, किन्नर, देव, मनुष्य सभी मुनि के चरणो मे झुकते है।

इसी सोच-विचार मे प्रभात हो गया। राजा-रानी—दोनो ने शय्या त्याग किया और नित्य कर्मों मे लग गये। राजा यशोधर ने अपने किसी भी इंगित से रानी पर यह प्रकट नही होने दिया कि मैं कुछ जानता हूँ। फिर भी वे रानी की नाटकीयता देखना चाहते थे, अत उसका हाथ पकडकर वोले—

"वैठो प्रिये ! आज तुमसे कुछ विशेष चाहता हूँ।"

कुशल अभिनेत्री-रानी नयनावली ने राजा के कण्ठ मे बाँहे डालकर कहा—

"सव कुछ समर्पण करने वाली नारी के लिए कुछ विशेष देने को रहता ही क्या है ? अव मै आपको दे ही क्या सकती हूँ ?"

राजा उसके अभिनय पर मन-ही-मन मुस्कराये और वोले—

"पहले यह सुनो कि मैं तुमसे वही माँगूँगा जो आज तक नही लिया और इसे एक-न-एक दिन पुरुष माँग ही लेता है।"

"मैं कुछ सुनना नही चाहती स्वामी !" यह कह रानी ने राजा की शय्या पर रखा खड्ग उठा लिया और अपने कण्ठ पर रखते हुए कहा—"इन प्राणो से अधिक मेरे पास क्या है ? आप आज्ञा तो करे, ये प्राण भी आपके श्रीचरणो मे न्यौछावर कर दूँगी।"

राजा यशोधर ने रानी के हाथ से खड्ग ले लिया और बोले—

"तुम्हारे प्राण मै भला कैसे ले सकता हूँ ? क्योकि फिर तो मै भी नही रहूँगा। मैं तो कुछ और ही चाहता हूँ ।"

"यो पहेलियाँ न बुझाओ नाथ !" रानी ने कहा—"आज्ञा करे। आपके लिए अदेय क्या है ? जो कहोगे, सो दूँगी ।"

राजा बोले—"तो प्रिये ! मुझे अनुमति दो। सयम लेने की अनुमति। जिस पथ पर मेरे पिता यशोध मुझे राज्य सौंपकर गये थे, उसी पथ पर मै तुम्हारे पुत्र गुणधर को राजा बनाकर जाऊँगा।

"प्रिये ! जैसे मेरी माता चन्द्रमती ने मेरे पिता को सयम की अनुमति दी थी, उसी तरह तुम भी दो ।"

सुबक-सुबककर रो पड़ी रानी नयनावली। लेकिन भीतर-ही-भीतर वह इतनी प्रसन्न हुई, जैसे बिल्ली के भाग्य से ऊँचा—पहुँच से दूर—छीका टूटने पर बिल्ली को प्रसन्नता होती है। मुनि बनकर राजा स्वय ही उसके और कुबड़े के बीच से हट जायगा। पर रानी ने अपनी इस खुशी को बडे कौशल से छिपाया और रोकर बोली—

"मुझे क्या मालूम था कि आप मुझे इस तरह ठग लेंगे। वचनबद्ध करके मुझे आपने कही का नही छोडा। नाथ ! आप तो जानते है कि आपके बिना मैं जी नही सकती। पर अब मैं अपने वचन का पालन भी करूँगी और जीऊँगी भी।

"स्वामी ! यदि आप सयम लेगे तो मै भी आपके साथ सयम लूँगी। बात पक्की हो गई। मै आपके साथ ही चारित्र ग्रहण करूँगी।"

रानी का ऐसा निश्चय सुन राजा अवाक् रह गये। उनकी कुछ समझ में नही आया। वार-वार वह यही सोच रहे थे कि जिस कुवड़े के लिए रानी मुझे मारना चाहती है उस कुवड़े को छोड़कर यह मेरे साथ साध्वी वनकर कैसे रहेगी। दैव ! यह कैसा आश्चर्य है ? रात जो देखा वह सत्य था या अव जो सुन रहा यह सत्य है ? इस संसार मे क्या सभी कुछ स्वप्न है ?

राजा यशोधर यह सोच रहे थे और रानी नयनावली सोच रही थी कि इसके साथ सयम लेने का निश्चय जताकर मैंने इस पर अपनी प्रीति की अटूट छाप जमा दी। पर मैं इसके प्राण संयम लेने पहले ही ले लूँगी। फिर न रहेगा वाँस और न वजेगी वाँसुरी। मुझे फिर इसके साथ वन मे जाने की जरूरत ही क्या पड़ेगी ? मेरा कामदेव तो वह कुवड़ा है।

कुछ देर तक दोनों ही मौन रहे। फिर कक्ष मे से वाहर निकलते-निकलते राजा ने कहा और कुछ रहस्यमयी भाषा मे इस तरह कहा कि रानी राजा के शब्दो को समझे, उसके भावो को न समझे। राजा ने कहा—

"प्रिये ! तुम्ही तो मेरी प्रेरणा हो। तुम्हारे कारण ही मैं यह रस-रंग मे डूवा रहा और तुम्हारे ही कारण सयम-रस मे डूबूँगा। तुमने मुझे कच्चा नही किया, वल्कि मेरे साथ चलने को तैयार हो गई, तुम्हारे इस उपकार को कभी नही भूलूँगा। वस, अब तो माता चन्द्रमती से ही अनुमति लेनी है, जो कुछ कठिन लग रही है।"

यह कहते हुए राजा यशोधर वाहर निकल गये। अव वे माता चन्द्रमती से सयम की अनुमति लेना चाहते थे, जो वस्तुतः कठिन काम था। कारण यह था कि रानी चन्द्रमती अभी तक मोहमाया

ने फँसी थी। यदि ऐसा न होता तो वे भी अपते पति राजा यशोधर के साथ सयम ले लेती। वे वलियज्ञ आदि मिथ्या कर्मकाण्डो से बहुत प्रभावित थी और सयम आदि को कायाकष्ट ही समझती थी। यद्यपि उनके वंश मे परम्परा से निर्ग्रन्थधर्म माना जाता था, पर भारत की धरा पर नरवलि, पशुवलि आदि द्वारा सुख प्राप्त करने का दुर्विश्वास भी तो फैला था। इस झूठे विश्वास से राजमाता चन्द्रमती ही नही बडे-बडे राजा भी आक्रांत थे।

राजा यशोधर जानते थे कि मोह-माया मे लिप्त माता चन्द्रमती उन्हें कदापि अनुमति नही देंगी और माता की अनुमति के बिना कोई भी आचार्य मुनि-दीक्षा नही देगे। अतः राजा यशोधर ने एक उपाय सोच लिया।

उन्होंने सोचा कि मैं अपनी माता को झूठ-मूठ ही एक ऐसा सपना सुनाऊँगा कि माता को विवश होकर संयम की अनुमति देनी होगी। क्योकि सपने का रूप इस प्रकार का होगा कि सयम लिये बिना मेरा कल्याण ही नही हो सकता। हर माता अपने पुत्र का कल्याण चाहती है। यद्यपि मेरी माता निवृत्ति के मार्ग को नही चाहती, प्रवृति के रास्ते पर ही वह चलती है। फिर भी मेरे कल्याण के लिये वे मुझे सपना सुनते ही सयम की अनुमति अवश्य देंगी।



४

शुभ और अशुभ, जीवन-मरण, शत्रु के घात-प्रतिघात, लाभ हानि, मूट्ठी मे बन्द वस्तु, खोई वस्तु और प्रवासी का सुख-दुख ये सब बातें वे सिद्धयोगी जान सकते है, जिनके हाथ मे समस्त सिद्धि बसी हुई है। लेकिन ऐसे सिद्धयोगी भी पर-पुरुष मे अनुरक्त हुई स्त्री के हृदय का भेद जान पाने मे असमर्थ रहते हैं।

यदि राजा यशोधर सौभाग्य से स्वय अपनी आँखो से नयनावली रानी का दुश्चरित्र न देखते तो वे भी उसे सदा-सर्वदा अनन्य प्रीतिमती सन्नारी प्रिया ही समझते रहते। जो स्त्री अपने पति के साथ मात्र वियोग के कारण—प्रतिबोध के कारण नही, सयम लेने का निश्चय करती हो, वह पर-पुरुषगामिनी कैसे हो सकती है? पर उसका भीतरी निश्चय तो कुछ और ही था। अद्भुत है यह त्र. चरित्र!

राजा यशोधर नित्य की तरह माता चन्द्रमती की प्रातर्वन्दना करने पहुंचे। पर आज वे कुछ खिन्न व उदास थे। माता की चरण-रज का स्पर्श करके वे एक ओर आसन पर बैठ गये। राजमाता ने कहा—

'अरे धर! आज तू उदास क्यो है बेटा?"

राजमाता चन्द्रमती के पति का नाम महाराज यशोध था। इसलिए वे यशोधर को न तो प्यार मे यशू कहती थी और न पूरे नाम यशोधर से पुकारती थी। चूंकि आर्य-ललनाएँ पति का नाम

ही लेती, इसलिए राजमाता चन्द्रमती यशोधर राजा को 'धर' कहकर ही बोलती थी।

राजा यशोधर ने राजमाता के प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया और एक उच्छ्वास छोडा। अब तो राजमाता चन्द्रमती और भी अधिक विकल-व्याकुल हो उठी। उन्होने कहा—

"धर! तू बताता क्यो नही? अरे बेटा! तुझे भला क्या कष्ट हो सकता है? तेरी दु:खभरी उच्छ्वास देखकर मेरा हृदय जला जा रहा है। मैं तेरी बलि जाती हूँ, बता दे बेटा!"

राजा यशोधर ने कहा—"माँ! रात मैंने बडा भयंकर सपना देखा है। उस सपने के कारण ही मैं बहुत व्याकुल हूँ। वही सपना सुनाने मै आया हूँ।"

राजमाता हँसकर बोली—

"मैं तो समझी जाने क्या बात होगी। तू सपने से अब भी—जागने के बाद भी क्यो घबरा रहा है? पुत्र! सपने का अस्तित्व ही क्या है?"

"कहती तो तुम ठीक हो माँ!" राजा ने कहा—"पर कुछ सपने तो अनागत घटनाओ के सुनिश्चित सूचक होते है। उनके फलित को टाला नही जा सकता। अशुभ फलदायक सपनो का उपाय भी तो किया जाता है। मेरा सपना माँ, बहुत अशुभ है, पर साथ ही अशुभ को शुभ मे बदलने का सुनिश्चित उपाय भी सपने मे ही मुझे मिल गया है।"

"तेरी रहस्यमय बाते क्या समझूंगी?" राजमाता चन्द्रमती ने कहा—"वत्स! तू अपना सपना मुझे बता तो सही, मैं उसकी शान्ति कराऊँगी।"

राजा यशोधर ने अपना कल्पित और मनगढन्त सपना सुनाना शुरू किया । वे बोले—

"अम्ब ! रात को सपने मे मैं अट्टालिका से गिर पड़ा। सीढ़ियों से लुढकता हुआ मैं भूमिखण्ड पर आकर टिका । तभी मैंने देखा कि विकराल भुजाओ वाला एक योद्धा हाथ मे दण्ड लिये खड़ा है । उसे देख मैं और भी भयभीत हो गया । उस अदर्शनीय पुरुष ने मुझसे कहा—यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो शीघ्र ही निर्ग्रन्थ उपदेशो से युक्त दीक्षा ग्रहण कर ले । हे राजा ! यदि तू मुनिदीक्षा नही लेगा तो मैं तुझे खा जाऊँगा ।

"अम्ब ! मैंने भी फिर यह निश्चय किया कि यह राज्य, पृथ्वी, वैभव आदि किसी का नही है । और तो और हम भी अपने नही हैं । अत: मैने श्रामणी दीक्षा अंगीकार कर ली ।

"अम्ब ! मैं यही कहने आया हूँ कि जो काम मैंने सपने मे कर डाला, वह शुभ और करणीय कार्य अभी कर डालूं । अपने यशस्वी पिता यशोध की तरह मैं भी अपने पुत्र गुणधर को राज्य देकर दीक्षा अगीकार करूँ । मुझे अनुमति दो अम्ब !"

"तू तो पागलो की-सी बात कर रहा है ।" राजमाता चन्द्रमती ने कहा—"हमारी कुलदेवी सब तरह से मगल करेगी । वे सब आशाओ की पूर्ति और चिन्तित मनोरथो को क्रियान्वित करती है।

"हे पुत्र ! तू मेरे कहने से कुलदेवी कात्यायनी के सम्मुख विविध प्रकार के जीवों की बलि दे । इसमे तेरे और साथ ही समस्त राजपरिवार के सम्पूर्ण दु.खो का शमन होगा । मेरे कहने से तू चिन्ता त्याग दे ।"

माता की बात सुन राजा यशोधर बडे चक्कर मे पड़े। उन्होने तो सोचा था कि मेरे कल्पित सपने को सुनकर माता

सहज ही सयम की अनुमति दे देंगी। पर वे तो सर्वथा अकृत्य कार्य करने को कह रही थी। जैसे कोई कहे कि तू मिर्च खा ले, तुझे मिठाई खाने का स्वाद मिलेगा। राजा यशोधर किसी भी मूल्य पर हिंसा द्वारा अपना पतन नही चाहते थे। माँ के अज्ञान को हटाने के विचार से उन्होने कहा—

"माँ ! हिसा से बडा तो कोई अधर्म है ही नही। किसी भी जीव का वध आत्मघात के समान है, क्योकि सभी मे एक ही आत्मतत्त्व समाया हुआ है।

"अम्ब ! यह तो बडी मोटी-सी बात है कि दु ख देने से दु:ख और सुख देने से सुख मिलता है। अत किसी की भी हिंसा करके हमारा कल्याण कैसे हो सकता है ?

"अम्ब ! निर्ग्रन्थ मुनियो का उपदेश तुमने नही सुना। मैंने जो सुना है उसका सार रूप मै तुमसे कहता हूँ।

"माता ! अहिंसा ही परम धर्म है। अभयदान से बडा कोई दान नही। हिंसा ऐसा पाप है, जिसका फल जीव अनेक जन्मो तक भोगता है। यदि कात्यायनी देवी पीडा को लेती है तो बदले मे वह पीडा ही देगी, सुख-शान्ति कदापि नही।

"माता ! मै तो किसी भी मूल्य पर हिंसा नही करूँगा।"

यशोधर की बात चन्द्रमती के गले नही उतरी। उसने कहा—"पुत्र ! तू मुनियो के उपदेश के चक्कर मे मत फँस। मैं तुझसे बडी हूँ। तुझसे अधिक जानती हूँ। बेटा होकर तू मुझे ही उल्टी शिक्षा दे रहा है ?

"बेटा ! ससार मे वेद ही आर्ष ग्रंथ हैं। राजा को उचित है कि वह वेद मार्ग पर चले। एक ओर यदि तेरे तीर्थंकर की वाणी है तो दूसरी ओर वेदो की दुन्दुभि भी बोल रही है।

"वेटा ! वेदो मे लिखा है कि जीवो को मारकर देवी को वलि देना और महाप्रसाद के रूप मे वलि-मास को खाना महापुन्य है। इसी से स्वर्ग और मोक्ष मिलता है। हमारे कुलगुरु और द्विजगुरु जो कहते है, वही करणीय है। अत: तू...."

"नही-नही, कभी नही ।" माँ की वात आगे न सुन वीच मे ही वडी दृढता से यशोधर राजा ने कहा—"अम्व ! यह दुष्कर्म तो मैं कभी नही करूँगा ।

"माँ ! वलि का जो प्रचार वेदो के नाम पर है, वह वेद विरुद्ध है। मांस-लोलुप ब्राह्मणो ने वेदो पर श्रद्धा रखने वालो की श्रद्धा का अनुचित लाभ उठाया है। उन्होने आखेटप्रिय निर्बुद्धि राजाओं को प्रभावित कर जीवहिंसा का प्रचार-प्रसार किया है। वेदो मे वलि का विधान तो है ही नही ।

"माँ ! वलि के सम्वन्ध मे मुझे हिन्दू पुराणो की एक कहानी याद आ गई। तुम भी सुनो ।"

इसके वाद यशोधर राजा ने राजमाता चन्द्रमती को संक्षेप एक कहानी इस प्रकार सुनाई ।

एक राजा ने किसी रात स्वप्न मे देखा कि जगन्माता दुर्गा ने राजा से कहा कि हे राजा ! मुझे वलि दे। राजा उठा और उसने दूसरे दिन सभा मे उपस्थित ब्राह्मणो को अपना सपना सुनाया तो ब्राह्मणो ने कहा—

"राजन् ! देवी को नरवलि दो। यदि वैसे ही वलि देने की वात होती तो मेष, अजा, कुक्कुट आदि किसी की भी वलि दी जा सकती थी। जगन्माता ने स्वयं कहकर वलि मांगी है तो उन्हें नरवलि देकर ही संतुष्ट करना चाहिए ।"

राजा को ब्राह्मणो की यह सलाह पसन्द तो आई, पर वलि के लिए उसे कोई पुरुष या वालक नही मिला। दूसरी रात देवी ने सपने मे फिर कहा—

"राजा! मुझे वलि दे। जब तक तू मुझे वलि नही देगा, तेरी और तेरी प्रजा की कुशल नही।"

जब राजा की आँख खुली तो वह वडी चिन्ता मे पड गया। उसने नगर भर मे और अपने पूरे राज्य मे ढिंढोरा पिटवाया कि कोई माता मुँहमाँगा—चाहे जितना स्वर्ण ले ले और अपना पुत्र देवी की वलि के लिए दे दे। पर कोई माता तैयार नही हुई। अब क्या करे राजा? यह दिन भी वीता तो तीसरी रात देवी ने फिर सपने मे कुछ अधिक क्रुद्ध होकर कहा कि राजा! अगर तू मुझे वलि नही देगा तो मैं तेरा सर्वनाश कर दूंगी।

राजा अब तो वहुत ही घवराया। अगले दिन वह स्वय ही किसी वलि-कुमार की खोज मे चल दिया। वन मे पहुँचा राजा। राजा के भाग्य से एक वालक उसे वृक्ष मूल मे वैठा मिल गया। राजा उसे ही घोडे पर विठाकर ले आया।

अब तो वलि की तैयारियाँ होने लगी। वलि-वालक को अक्षत आदि से पूजा गया। पुरवासियो ने उस वालक को देखा तो रोने लगे और कुछ राजा को तथा कुछ देवी को कोसने लगे। पर वे सव कोसने से अधिक कुछ कर भी नही सकते थे।

यथासमय वलि-कुमार को वलि-वेदी पर वैठाया गया। राजा ने वालक का वध करने को ज्यो ही खड्ग ऊपर उठाया कि उसका हाथ स्वत: ही जड हो गया। नीचे नही झुका। राजा ने देवी की प्रतिमा के सामने नत होकर कहा—

"हे जगदम्बे! तुमने स्वयं ही मुझ से तीन वार सपने मे

आदेश देकर वलि माँगी थी और अव तुम्ही ने मेरा हाथ स्तम्भि
कर दिया है । मेरे सकट का निवारण करो ।"

तभी जोरो से बादल गरजने लगा । वडा भयंकर गर्जन-तर्जन
हुआ । दुर्गा देवी की वाणी सभी ने सुनी । वह कह रही थी—

"अरे अहकारी राजा ! मैंने तुझसे अपने पुत्र की वलि कब
माँगी थी ? तूने ढिंढोरा पिटवाया और मनमाना स्वर्ण देकर
वलि-वालक की याचना की थी । पर किसी माँ ने अपना पुत्र वध
के लिए नही दिया ।

"मूर्ख ! कौन माता अपनी संतान के प्राण लेगी ? मैं क्या
जगन्माता यो ही हूँ ? समस्त प्राणी मेरी सतान हैं, तभी तो मैं
जगदम्बा हूँ ।

"राजा ! मैंने तो तेरे अहकार की वलि माँगी थी । अहकार
ही सब विनाश की जड है । अजिलवद्ध होकर तू मुझे अपना
अहकार दे । मैं राजा हूँ इस अहकार मे तू वडे-वडे अनर्थ करता
है । तेरा आखेट भी इसी अंहकार के कारण चलता है । जब तू
अपने अहकार की वलि देगा तो तू अपने को राजा नही, प्रजा का
सेवक समझेगा । तेरे वन मे विचरण करने वाले पशु-पक्षी भी
तो तेरी प्रजा है ।"

इसके वाद तो राजा का अहकार विगलित हो गया । राज-
माता चन्द्रमती को यह कहानी सुनाने के वाद राजा यशोधर ने
उससे कहा—

"अम्व ! अव तो समझ गई होगी कि वलि का विधान
क्या है ?"

"मैं तेरी कहानियो के वहकावे में नही आ सकती ।" राज-
माता चन्द्रमती ने यशोधर राजा से कहा—"मैंने वड़े-वड़े पंडि

और वेदान्ती ब्राह्मणो को देखा है कि वे खूब बलियज्ञ करते हैं। फिर भी हट्टे-कट्टे और सुखी-सम्पन्न है। उनका कभी माथा भी नही दुखता। यदि हिंसा पाप होती तो उन्हे कुछ तो कष्ट होता ? आँखो देखे इसी विश्वास पर मैं कहती हूँ कि कात्यायनी देवी को तू बस एक मुर्गे की बलि दे दे। तेरा सब तरह से मगल होगा।"

यशोधर राजा ने पुन अपनी माता को समझाया—

"अम्ब ! तुम जो कह रही हो कि बलियज्ञ करने वाले ब्राह्मण सब तरह से सुखी-सम्पन्न हैं, इसलिये बलि-हिंसा पाप नही है। इसका उत्तर भी सुनो माँ !

"माँ ! दो किसान थे। एक बार एक किसान की फसल अच्छी हुई और दूसरे किसान की नष्ट हो गई। दूसरी बार दूसरे किसान ने जिसकी फसल नष्ट हुई थी, पुन क्षेत्र मे बीज बोया। भाग्य से उसकी फसल लहलहाने लगी। इसके विपरीत पहले किसान ने, जिसकी फसल अच्छी हुई थी, उसने दूसरी बार खेतो को खाली छोडा और पिछली फसल की पैदावार को ही खाने लगा।

"दूसरे किसान की फसल पककर आने मे अभी महीनो का विलम्ब था। अत पिछली फसल शून्य के कारण वह दाने-दाने को परेशान था।

"अम्ब ! इन दोनो किसानो की दशा पर विचार करते हुए एक अज्ञानी ने कहा कि यह कैसा अधेर है कि जिसकी फसल लहलहा रही है, वह दाने-दाने को परेशान है और जिस के खेत सूने पडे हैं, वह मौज मार रहा है।

"अम्ब ! यह टिप्पणी कैसी मूर्खता भरी थी ! थी कि नही ? जिसके पास पहला अन्न भरपूर था, वह तो खायेगा ही।

"सो अम्व ! ये हिसक विप्र पिछले जन्म के पुण्यो का मुर भोग रहे है। आगे तो फसल है ही नही। उनका कर्म-क्षेत्र सून है। उसमे पुण्यकर्म का वीजवपन हुआ ही नही है। अत ये हर अगले भव मे रोयेंगे। पहले तो मरकर नरक भोगेगे। फिर यदि मनुष्य का जन्म मिल भी गया तो कोई अंधा बनेगा और कोई कोढ़ी।

"अम्व ! इसके विपरीत जो पुण्यकर्मी आज कष्ट भोग रहे है। दूसरे किसान की तरह दाने-दाने को परेशान है, वे इसलिए कि पहले कुछ नही कमाया था। पर अब जो पुण्य कर रहे है, उसका फल अवश्य पायेंगे।

"अम्व ! तुम कुछ भी कहो, मैं हिसा नही करूँगा।"

पुत्र की ऐसी दृढता देख राजमाता चन्द्रमती ने अपने अधि कार का शस्त्र हाथ मे लेकर यशोधर राजा से कहा—

"पुत्र ! मै तुझे आदेश देती हूं कि तुझे वलि देनी ही होगी।"

"अवश्य दूंगा अम्व, दूंगा। मैं वलि दूंगा।" यह कह यशोधर राजा ने अपना खड्ग कोष से मुक्त किया और अपनी ग्रीवा पर रखते हुए वोले—"कात्यायनी देवी के सामने तो क्या मैं अपनी ही जननी के सामने अपनी आत्मवलि दूंगा। पर-वलि देना मेरी विवशता है। मेरी वलि से तुम्हे प्रसन्नता हो, इसलिए मैं अपनी वलि देता हूँ।"

अवाक् हो गई राजमाता चन्द्रमती और भयातुर होकर चीखी-चिल्लाई—

"अरे-अरे पुत्र ! तू क्या करता है ? रुक जा बेटे ! मैं अब तुझसे हिंसा के लिए नही कहूंगी।"

राजमाता की चीख सुनकर अनेक सेवक दौडे आये और उन्होंने राजा यशोधर के हाथ से खड्ग ले लिया। वडी देर तक राजमाता चन्द्रमती का हृदय वडी जोरो से धडकता रहा। कुछ देर बाद राजमाता ने कहा—

"धर! अव मैं तुझसे प्राणि-वध की वात नही कहूँगी। पर इसके अलावा, जो कहूँ वह तो मानेगा ?"

यशोधर बोले—

"मानूँगा अम्ब! वचन देता हूँ कि जीवहिंसा के अतिरिक्त तुम जो कुछ भी आदेश दोगी, वह मानूँगा।"

यो पुत्र के आश्वासन प्राप्त कर राजमाता ने कहा—

"वत्स! तू आटे का वना मुर्गा देवी के सामने काट दे। उसमे तो जीव नही है न? इसलिए जीवहिंसा भी नही होगी।"

"मा! मै वचनवद्ध हूँ। इसलिए तुम्हारी यह वात मानूँगा।" राजा यशोधर ने कहा—"पर इससे भावहिंसा तो होगी ही। क्योकि आटे का मुर्गा काटते समय हिंसा का उपक्रम तो होगा ही। क्रियाहिंसा से भावहिंसा भी जागृत हो जाती है।"

"अब तू ज्यादा हिंसा-अहिंसा के सन्देह मे मत पड़।" राजमाता ने कहा—"मैं अभी आटे का मुर्गा वनवाती हूँ।"

यह कह राजमाता चन्द्रमती अपने काम मे लग गई। उन्होने आटे का मुर्गा बनवाया, जो रग-रूप मे सजीव कुक्कुट जैसा ही था। इस अजीव-वलि मे भी जीव-बलि का पूरा साम्य हो, इसका पूरा ध्यान चन्द्रमती ने रखा था। अत आटे के मुर्गे मे कुछ भाग पोला करके लाल रग पानी मे घोलकर भरा गया, ताकि काटते समय रक्त भी निकले। उसकी आँखे भी सजीव

मुर्गे की-सी थी। ऊपर जो पख बने थे, वे लाल, पीले, काले अ
स्वाभाविक रंगो से रगे गये थे। मुर्गे की कलगी अरुण थी।

इस मुर्गे को लेकर यशोधर देवी के मन्दिर की ओर च
तो उन्हे ऐसा लगा कि वध के भय से मुर्गा कातर दृष्टि से मे
ओर देख रहा हो। चलते समय राजमाता चन्द्रमती ने पु
यशोधर राजा को आशीर्वाद देते हुए कहा—

"वत्स! इस कुक्कुट-बलिदान से तुझे धवलश्री प्राप्त हो
विजयलक्ष्मी तुम्हारा वरण करे। शत्रु त्रस्त होकर तुम्हारे चर
मे नत हों। जा पुत्र! देवी तेरा कल्याण करे।"

राजा यशोधर मा का अशीष लेकर चल दिये, पर मन-
मन वे भावहिंसा के परिणाम पर भी विचार करते जा रहे थ
अन्त में उन्होने मुर्गे का वध कर ही दिया। मुर्गा आटे क
अर्थात् निर्जीव था। फिर भी वध करते समय राजा को ल
कि मुर्गे के करुण क्रदन से उनके कान बहरे हो गये हैं।

कटा हुआ मुर्गा लेकर राजा यशोधर वापस आये और ल
रूपी रक्त से सना आटे का पिण्ड उन्होंने माता को दे दिय

चन्द्रमती ने वह आटा मास की तरह राधा और महाप्र
कहकर यशोधर राजा ने खाने को कहा। राजा ने स्पष्ट इनक
करते हुए कहा—

"मां! मास-सेवन से बडा पाप कोई नही है। मैं इ
कदापि नही खाऊंगा।"

"तू कितना भोला है वत्स!" राजमाता चन्द्रमती ने कहा—
"तू क्या जानता नही कि यह आटा है? मैं कब कहती हूँ कि
तू मास खा? यह तो तुझे खाना ही पडेगा, क्योकि यह देवी क
महा-प्रसाद है।"

"कैसे खाऊँ अम्न ?" राजा ने कहा—"इसकी ओर देखते ही मुझे यह मास सा प्रतीत होता है । चाहकर भी और यह सोचकर भी कि यह आटा है, मै इसे खा नही सकूँगा ।"

"खायेगा कैसे नही ?" यह कह माता चन्द्रमती ने थोडा-सा मासरूप रधा आटा यशोधर के मुँह मे ठूँस ही दिया । राजा ने घृणा से वह ग्रास थूक दिया, पर थोडा-सा अश उनके कठ मे उतर ही गया था । भाव रूप से पहली बार मास उनके कठ के नीचे उतरा था ।

इसके बाद राजा ने कई बार कुल्ला करके अपना मुख शुद्ध किया । फिर राजमाता ने भी कोई आग्रह नही किया । कुक्कुट बलिदान के इस कार्य से राजमाता चन्द्रमती तो सतुष्ट थी, पर यशोधर राजा का मन अभी अशान्त था ।

कुक्कट का बलिदान करते समय राजा ने देवी के सामने प्रार्थना की थी—

"हे जगदम्बे ! यदि तुममे सचमुच ही शक्ति है तो मुझे अधिक जघाबल, बाहुबल और अचल जीवन मिले और मैं महाव्रतो का पालन कर सकूँ ।"

राजा यशोधर किसी दूसरे ढग से राजमाता से अनुमति प्राप्त करने की युक्ति पर विचार कर रहे थे । अभी कोई युक्ति उनकी पकड मे नही आई थी, पर राज्य भार से मुक्त होने का काम तो वे कर ही सकते थे, सो उन्होने पहला काम तो यह किया कि विधि-विधान से अपने पुत्र गुणधर का राज्याभिषेक किया और उसे राज-सिंहासन पर आसीन किया ।

गुणधर के राज्यारोहण के बाद अब तो सभी जान गये थे कि राजा यशोधर संयम लेंगे । रानी नयनावली को भी निश्चय

हो गया था कि अब यशोधर राजा दीक्षा लेंगे और मुझे
उनके साथ जाना होगा। रानी ने सोचा, 'मैं तो भला यहाँ
कहाँ जाऊँगी, पर राजा अवश्य जायेगा। पर वह तो इस संसा
से ही जायेगा। संयम लेने से पहले ही, मैं इसके प्राण ले लूँगी
इसके रहते मैं अपने कुबडे प्रेमी के साथ रमण नही कर सकी

राजा यशोधर का निश्चय संयम लेने का पक्का था
रानी नयनावली का निश्चय भी राजा को संयम से पहले ही म
देने का अटल था। कौन जाने क्या हो ?

जब राजा यशोधर ने पुत्र गुणधर को राज्यासीन किया
रानी नयनावली को कुछ शका हुई कि मेरा गुप्त प्रेम इसने ज
लिया है, वरना तो यह यों ही बिना किसी बात के ऐसे ऐश
को छोड़कर सयम लेने की बात क्यो करता ? अब तो इ
मारना और भी जरूरी है, क्यो कि यह रहेगा तो भी मेरी
नामी करेगा।

अब गुणधर मालव के राजा थे। मालवेश्वर गुणधर पित
संयम लेने की कल्पना से खिन्न अवश्य थे, पर यह तो इस र
परिवार की सदा की परम्परा थी, इसलिए वे पिता के धर्म
मे अपने मोह के कारण अन्तराय बनना नही चाहते थे। वे
के दीक्षा महोत्सव की तैयारियाँ भी कराने लग गये थे। र
यशोधर को तो अब बस किसी मुनि के उज्जयिनी पधारने
प्रतीक्षा थी। क्योकि मुनि के आने से पूर्व उनकी सयम-वरण
शुभ इच्छा कैसे पूरी होती ?

५

अपने कार्य मे कुशल, सतत चिन्तित रानी नयनावली राजा
ाजा यशोधर के पास आई और बोली—

"हे प्राणधन ! मैंने आपके कल्याण के विचार से देवी का पूजन
कया है। देवी के भोग से बचे अन्न का भोजन आज मैं समस्त
न्त पुर को खिलाऊँगी। आप मेरा यह भोज-निमन्त्रण स्वीकार
रे। आज की रसोई मैं ही बनाऊँगी।

"प्राणेश्वर ! इस प्रकार कुलधर्म से पूरित होकर हम दोनो
ाथ-साथ प्रव्रज्या धारण करेंगे। आपके बिना तो मैं जीवन ही
ारण नही कर सकती। अत मै भी आपके साथ तप करूँगी।

"आर्यपुत्र ! जैसे कामदेव की रति, इन्द्र की शची, परम
ुनि की शुद्धमती, विष्णु की लक्ष्मी और राम की सीता अनुगा-
मिनी है, उसी प्रकार हे प्रिय ! मैं भी आपकी अनुचारिणी हूँ।

"स्वामिन् ! मुझे आपके साथ तपश्चरण और मरण भी
अच्छा लगता है और आपके बिना यह सब वैभव भी निस्सार
र फीका है।"

राजा यशोधर ने रानी नयनावली का भोज-निमन्त्रण सहज
ही स्वीकार कर लिया। यद्यपि वे यह अच्छी जानते थे कि रानी
नयनावली जो कुछ कह रही है, वह चातुर्यपूर्ण दिखावा है,
छलावा है, फिर भी वे उसके अभिनय के पूरक बनना चाहते
थे।

जैसी होनहार होती है, वैसे ही विचार बन जाते हैं। ज रानी पर-पुरुष मे अनुरक्त है, वह भला अपने पति का कल्याण कैसे चाह सकती है ? रानी नयनावली राजा यशोधर के साथ संयम ले, यह तो असम्भव ही था। अत: यह भी सोचा जा सकता था कि भोज के बहाने नयनावली रानी राजा को विप दे दे। पर राजा के सरल मन मे यह विचार कैसे आता ? सरल व्यक्ति सम्पूर्ण जगत को सरल ही देखता है। अत: उन्होने सोचा—'रानी नयनावली मेरे साथ सयम तो क्या लेगी पर, सयम से पहले ही मेरा प्राणान्त न कर दे। इसलिए इससे सावधान तो रहना चाहिए, पर ऐसा कोई व्यवहार नही करना चाहिए, जिससे इसको यह सन्देह हो कि मैं इसके चरित्र-भेद को जान गया हूँ। यदि मैं इसका भोज-निमन्त्रण स्वीकार नही करूँगा तो यह सन्देह करेगी।....'

भावी के अनुकूल निश्चय कर राजा यशोधर ने नयनावली रानी का भोज-निमन्त्रण सहर्प स्वीकार कर लिया।

फिर भोज का समय आया। नयनावली का भवन नाना प्रकार के सुस्वादु व्यजनों की सुवास से महक उठा। शुद्ध गोदुग्ध की खीर वनी थी, जिसमे अनेक प्रकार की मेवाएँ पडी थीं। दुग्ध से वने अनेकों पदार्थो के साथ वेसन से वने मिष्टान्न भी थे।

यथासमय राजा यशोधर नयनावली के अन्तःपुर में पहुँचे। उनके साथ जीमने वाले और भी थे। सवके साथ राजा यशोधर आसन पर वैठे। उनके सामने सोने का थाल रखा गया। मानो नया सूर्य उदित हुआ हो। उस सुवर्ण थाल में रखी कटोरियाँ ऐसी शोभायमान हुईं, जैसे गगनमण्डल मे तारागण शोभित होते है। भाँति-भाँति के भोजन परोसे गये। जीमने की वेला में भांज

रसो से युक्त रसोई से ऐसी सुवास उठी, जैसे सुकवि की काव्यकथा नाना काव्य रसो से मधुरिम हो उठती है।

राजा भोजन करने लगे और रानी हँस-हँसकर परोसती जाती थी। अन्त मे उसने राजा के लिए विशेष रूप से बनाये गये विषमिश्रित मोदक परोसे और धीरे से कहा—

"ये लड्डू मेरी माता ने भेजे है। मैंने वडे यत्न से आपके लिए रखे है।"

रानी के वचनो का प्रतिवाद किये विना राजा ने वे विष-मोदक खा लिये। खा-पीकर राजा उठे। मुख प्रक्षालन करके ताम्बूल लिया और चलकर अपने अलिन्द मे आये तो विष का प्रभाव होने लगा। उनकी जीभ सूखकर तालू से लग गई। अग-अग ऐठने लगा।

राजा यशोधर को किसी ने विष दिया है, इसका शोर मच गया। मन्त्री, राजपुरोहित, सेवक आदि राजा के चारो ओर इकट्ठे हो गये। राजमाता चन्द्रमती और रानी नयनावली भी वही आ गई।

रानी घवराने लगी। उसने तो सोचा था कि राजा का प्राणान्त हो जायगा और किसी को पता भी न चलेगा। पर अब तो राजा को वचाने के आशापूर्ण प्रयास भी होने लगे थे। राज-सेवक वैद्य को वुलाने गये थे। सवको विश्वास था कि नृप यशोधर वच जायेंगे।

रानी नयनावली ने अपना कर्तव्य निश्चित किया। विष से मूर्च्छित राजा के वक्ष पर वह पछाड खाकर गिरी और अपने केश इस तरह फैला लिये कि राजा का मुख-ग्रीवा ढक गये। इसी वीच रोते-रोते रानी नयनावली ने राजा का कठ हाथ के

दोनो अँगूठो से ऐसे दवाया कि एक भी हिचकी लिये बिना उ
प्राण पखेरू उड़ गये ।

बड़ी देर तक रानी नयनावली राजा के वक्ष पर सिर र
और केश फैलाये रोती रही । जब वैद्य आया तो उसने देखा
राजा का प्राणान्त हो चुका है। पुत्र को मरा देख राजम
चन्द्रमती शोक के वेग से मूच्छित हो गई, और फिर तो उस
मूर्च्छा दूर ही नही हुई । राजमाता चन्द्रमती भी परलोक सि
गई । रानी नयनावली की राह का काँटा यशोधर और च
मती—पति और सास दोनो ही दूर हो गये ।

गुणधर राजा ने पिता यशोधर और पितामही चन्द्रमती
मरण के बारे मे सुना तो वह सद्गुणी राजा कपित होकर
पर गिर पडा और मूर्च्छित हो गया । फिर मूर्च्छा दूर होने
गुणधर राजा धाड मारकर हा पिता ! कहकर रोने लगा
उसका रुदन बडा ही कारुणिक था ।

रानी नयनावली भी हा नाथ ! हा प्राण ! कहकर विल
कर रही थी । पर यह सब उसका तो नाटक ही था ।

गुणधर तो मन्त्रियो के समझाने पर भी शान्त नही होता
रो-रोकर वह कह रहा था—

"हा तात ! अब मेरा कौन है ? तुम्हारे बिना यह भ
यह उज्जयिनी और यह धरा सूनी है । बिना तुम्हारे यह म
राज्य आग जैसा लग रहा है ।"

जब गुणधर का शोक आँसुओ के माध्यम से कुछ बह
और विलाप मे हृदय कुछ हल्का हुआ तो मन्त्रियो ने
समझाया—

"हे राजन् ! इस असार ससार मे राजा हो या रक—सदा कोई नही रहता। आपके पिता जैसे न जाने किनने राजा चले गये। नल, नहुष, सगर और मान्धाता जैसे राजा भी नही रहे।

"हे राजन् ! ससार के इस अटल नियम को सत्य जान कि जो आता है, वह जाता भी है, तुम शोक का त्याग करो।"

मत्रियो के इन वचनो से गुणधर को धैर्य बँधा। रानी नयनावली ने भी अपने पुत्र को समझाया—

"वत्स ! मुझ अभागिनी को देख धैर्य धारण कर। मेरा तो सर्वस्व ही लुट गया। तू तो फिर भी पुरुष है। पिता सदा किसी के नही रहते। पर नारी तो अभागिनी ही विधवा होकर जीती है। जाने किस गुप्त शत्रु ने मेरे प्राणेश्वर को विष देकर मेरा सुहाग लुट लिया है।

"बेटा ! अब शोक का त्याग कर, वही कर जो पुत्र पिता के मरने पर करता है।"

गुणधर को अब चैतन्य हुआ कि मुझे क्या करना है। उसने पिता यशोधर और पिता की माता, अर्थात् पितामही चन्द्रमती की अन्त्येष्टि क्रिया का प्रबन्ध किया। माता-पुत्र—दोनो के शव शोकपूर्ण वाद्य-ध्वनियो के बीच उठाये गये और सभी बधु-बाधव, राज समाज श्मशान को जाने लगे।

समस्त उज्जयिनी मे शोक छा गया था। सबके मुख मलिन थे। अन्त.पुर की रानियाँ छाती पीट-पीटकर रो रही थी। पर मन की मैली, कुबडे मे आसक्त रानी नयनावली अपने निवास से बाहर नही निकली।

राजा यशोधर का दाह सस्कार सम्पन्न हुआ। पिता और पितामही की सद्गति के लिए राजा गुणधर ने उनकी अस्थियो

को गगा मे प्रवाहित करवाया। इसके बाद भी गुणधर ने पिता
पितामही की सद्गति और स्वर्ग-प्राप्ति के लिए अनेक तरह
लौकिक दान और भोज दिये।

धीरे-धीरे सब सामान्य होने लगा। जब इस संसार मे सुख
भी स्थिर नही तो शोक भी सदा कैसे रहता ? राजा यशोधर का
वियोग-दुःख अब राजा-प्रजा दोनो ही भूल गये थे। अब गुणधर
राजा थे। वे भी अपनी कुल परम्परा का निर्वाह करते हुए न्याय
नीति से मालव की प्रजा का पालन करते थे। नयनावली का
दुराचरण विना किसी बाधा के ऐसे चल रहा था जैसे तटबन्ध
तोड़कर बहने वाली क्षुद्र नदी हो।

  

"प्रिये ! पिता अचानक ही चल बसे।"

"और पितामही भी तो। उनको तो किसी ने विष भी नहीं
दिया था। वे तो पुत्र के शोक की अति मे ही प्राण दे बैठी। माँ
की ममता कैसी महान होती है स्वामी !"

ये बाते राजा गुणधर और पट्टमहिषी कुसुमावली मे हो
रही थी। पत्नी कुसुमावली की टिप्पणी सुनकर पति गुणधर
मौन रहे। रानी ने पूछा—

"क्या सोच रहे है स्वामी ?"

राजा ने कहा—"कुछ नही। यही कि परलोक मे भी क्या
वे साथ-साथ होगे ? एक पुत्र के नाते मैंने वह सब कुछ कर दिया
है कि दोनो स्वर्ग के वासी बनें। उनके लिए मैंने पिण्डदान भी
किया, गोधन, भूमि, स्वर्ण और अन्न का दान भी दिया है।
तुम तो जानती ही हो कि पिता के स्वर्ग-सुख के लिए मैंने क्या
क्या किया है।"

"जो कुछ आपने उनके लिए किया, क्या यह सब उन्हे पर-
लोक मे मिल जायगा ?" रानी कुसुमावली ने राजा गुणधर से
पूछा—"यह दान-धर्म तो आपका कर्म रहा। आपके कर्मों का
फल उन्हे कैसे मिलेगा ?"

"मिलेगा क्यो नही ?" राजा ने कहा—"पिता का कर्म पुत्र
को कैसे मिल जाता है ? मिलता है कि नही ?

"प्रिये ! पिता अपने पुरुषार्थ से अर्थात् अपने कर्म से जो कुछ
अर्जित करता है, वह सब पुत्र को मिलता है कि नही ? मिलता
है। मुझे भी तो पिता का राज्य मिला है। ऐसे ही पुत्र पिता
की आत्म-शान्ति के लिए जो कुछ करता है, वह पिता को मिलता
है।"

"आप कहते हैं तो मिलता होगा।" रानी ने कहा—"पर
मेरी समझ मे तो आता नही।"

"मैं थोडे ही कहता हूँ।" राजा ने कहा—"उज्जयिनी के
वेदान्ती ब्राह्मण ही ऐसा कहते है। उनका तर्क भी सुनो।

"वे कहते है हमारे सामने कोई वस्तु रखी है। हमारा हाथ
वहाँ तक नही पहुँचता तो हम हाथ मे बाँस लेकर उस वस्तु का
स्पर्श कर लेते है। तब वह बाँस, बाँस न होकर हमारा हाथ ही
हो जाता है—बाँस के रूप मे हमारे हाथ का विस्तार।

"इसी प्रकार, पुत्र भी पिता के कर्म का—उसके हाथ का
विस्तार होता है। मरणोपरान्त पुत्र जो करता है, वह पिता का
ही अपने लिए करना माना गया है।....लेकिन तुम क्या सोचने
लगी ?"

"मैं ...? कुछ नही स्वामी !" रानी कुसुमावली ने कहा—"मैं
सोच रही थी कि आखिर यह जीवन क्या है ?"

"तो तुमने क्या सोचा ?"

"यही कि जीवन एक भारवाही मात्र है। बोझा ढो
हमारा जीवन है और बोझा ढोते-ढोते मर जाने पर हम
पूर्ण कर पाते है, अर्थात् मृत्यु ही हमारे लिए संसार क
बड़ा पुरस्कार है।"

"यह तुम्हारा विचार है।" राजा ने कहा—"मैं त
झता हूं कि जब तक जीवित हूं, तभी तक भाग्यशाली हूं।

"पत्नी का इतना साहस नही, जो पति के विचार को
समझे।" रानी कुसुमावली ने कहा—"पर मैं यह कह
कि आखिर जीवन है क्या ? खाना-पीना, रोना-हंसना,
जागना, इन्द्रियों की तृप्ति करना और बाल्यावस्था
तक अपने ही शरीर को सब प्रतिक्रियाओ का केन्द्र सम
क्या जीवन है ? यदि ऐसा है तो मुझे आपके इस कथन
सन्देह है कि जब तक जीवित हूं, तब तक भाग्यशाली हूं

राजा गुणधर ने कहा—"तब तुम्हारी राय मे जी
है ?"

"जीवन एक साधन है।" रानी कुसुमावली ने अ
सूत्र रूप मे बताई।

राज ने पूछा—"काहे का साधन ?"

रानी बोली—"काहे का साधन ? संसार के प्र
बनाये रखने का साधन। सृष्टि की नैसर्गिक आवश्यक
पूर्ति करने का साधन। अनादि से अब तक सबका इ
सृष्टि के एक ही क्रम और एक ही गति मे कृमि,
पशु-पक्षी, मनुष्य, देव-यक्ष, किन्नर और राक्षसो के
भांति पानी मे बबूले की तरह उदय हुए और अन्त हुए

"इस महाकाल के महाप्रागण मे वे क्षणभंगुर ही प्रमाणित
है। जिनके नाम इतिहास के पृष्ठो पर अमर है, वे बडे-बड़े
ापुरुष, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव—इस कालचक्र पर नृत्य
ते गये—विलान होते गये। काल ने उन्हे जन्म दिया और
का ग्रास भी किया। इसी महाकाल ने प्राणो के इस व्यवसाय
अपना साधन बनाया हुआ है।"

रानी के इस विवेचन से राजा गुणधर बहुत प्रसन्न हुए।
सका हाथ अपने हाथ मे लेकर उन्होने कहा—

'तुम्हारे भीतर इस प्रकार कौन बोलता है प्रिये? तुम
नवी हो या देवी? मनुष्य की कल्पना और विचार-शक्ति के
की बाते तुम कैसे सोच लेती हो? तुम्हारी जैसी उम्र मे
ा स्त्रियाँ ऐसा सोच पाती हैं? माता नयनावली तो ऐसे
चारो से शून्य है। मुझे डर है कि तुम मेरा जीवन सूना करके
ही चली न जाओ।"

"जैसे सासूजी का जीवन सूना करके ससुरजी चले गये?"
ानी ने हँसते हुए कहा—"तुम मेरे मरने की बात कह रहे हो
ामी? जब मरना अनिवार्य ही है तो उससे डरना-घबराना
या? उसे तो हर्ष के साथ अपनाना चाहिए।"

"तो क्या जीवन को नही?" राजा ने पूछा।

रानी बोली—"स्वामी! जीवन, जो कभी भी अपना नही
, उसे अपनाना तो मूर्खता है। उसकी न तो कोई सीमा है और
परिधि। शरीर के अवसान के साथ उसका कोई सम्बन्ध भी
ही है। फिर उसी को केन्द्र मानकर समस्त ससार को उसी मे
न्द्रित करना हास्यास्पद है।"

"कुछ भी समझ में नही आता।" प्रिया कुसुमावली के सौ
को आँखों से पीते हुए राजा गुणधर ने कहा—"यह सुन्दर
शीतल-मन्द और सुगन्धित समीर ! तुम्हारा यह स्निग्ध
और यह मेरा प्यासा मन। मेरी समझ में तो यही जीवन
तारों से भरी इस रात मे जीवन कैसा स्निग्ध मालूम होता
जैसे प्राणों मे मोहक स्नेह फूटा पडता हो। यह जीवन
सुन्दर क्यो है ?"

"इसलिए कि यही जीवन ससार का केन्द्र है।"

"सच है, जैसे प्रकृति मे प्रभात, मध्यान्ह, अपरान्ह
सध्या होती है।" राजा ने कहा, "उसी प्रकार जीवन मे
जीवन मे सबसे सुन्दर क्षण प्रभात है। प्रभात, जहाँ आकां
की कोमल कलिकाएँ विकसित होती है। जहाँ चिन्ता की
गर्द नही, अधिकार-मद की दुपहरी नही। जहाँ उषा की सुन
किरणो की भाँति मनोहर अल्हडपन है। जीवन का यह प्र
—बचपन कैसा सुन्दर और पवित्र है !

"प्रिये ! किन्तु, यौवन जीवन की दुपहरी है। उसमे
वासना की प्रचण्डता आती है तो फिर ससार का कुछ और
रूप दीखने लगता है। उसका एक अलग सौन्दर्य है। जहाँ
है और है ताप, उत्कर्ष और शक्ति का समुद्र।"

"कह चुके अपनी बात ?" रानी ने कहा—"लेकिन
प्रखर सौन्दर्य मे भी एक भीषण वस्तु दुर्दम्य वासना का
है। उसे यदि सीमित रखा जाय तो यौवन जीवन का मर्या
भाग है, नही तो पतन का सरल मार्ग है।"

"पतन ?" राजा ने कहा—"प्रिये ! यह क्या नई बात

ने ? मध्यान्ह के वाद तो स्वत. ही तेजवान सूर्य का पतन ता है। इसी तरह यौवन की वासना का पतन बुढापे मे....।"

"उसे पतन क्यो कहते हो स्वामी ?" रानी ने कहा—"यह विकास की एक सीमा है। तुम क्या यह कहना चाहते हो कि वन मे प्रखरता बढती ही जाये ? ...

"स्वामी ! जिसे हम प्रभात, मध्यान्ह, अपरान्ह, सध्या और त्रि कहते है, वह और कुछ नही, परिस्थितियो का परिवर्तन है। कृति तो एकरस, एकभाव और अप्रतिहत गति से अपने मार्ग र चल रही है।"

"तव फिर जीवन भी ऐसा ही रहा ?"

"निश्चय ही ऐसा है।" रानी ने कहा—"स्वामी ! जीवन ा जो केन्द्रबिन्दु है, वह न तो कभी वालक होता है और न द्ध। न उसमे वासना उद्दीप्त होती है, न उसका शमन। ये सब ो भौतिक परिवर्तन है। उसी प्रकार, जैसे कि सूर्य न कभी अस्त ोता है, न उदय। वह तो ध्रुव रूप से अपने स्थान पर स्थिर कर अपना तेज विखेरता है।

"स्वामी ! विकल्प के नेत्र ही सूर्य का उदय-अस्त देखते है। ..खैर, यह छोडो। कल तो तुम्हारे आखेट का दिन है ?"

राजा गुणधर सर्वगुणसम्पन्न होते हुए भी आखेटप्रेमी थे। से वे क्षत्रियो का धर्म मानते थे। जो भी हो, प्रिया द्वारा ाखेट की याद दिलाने पर वे प्रसन्न हुए। प्रसन्नता प्रसग वदलने ी भी थी। जीवन-दर्शन के प्रसग से वे कतरा रहे थे। रानी भी ाजा के मन की वात जानती थी, सो उसने प्रसग मोड दिया।

रानी के मुँह से आखेट की वात सुन राजा ने कहा—

"सोचता हूँ, तुम्हें छोडकर कहाँ जाऊँ ? वन के ओर जाने दो प्रिये ! तुम्हारे ही आखेट का दिन रहे।"

"मेरे आखेट का ?" रानी ने आँखो ही आँखो मे मुस्क हुए कहा—"मेरे आखेट का कैसे ?"

"यह तो मोटी-सी वात है।" गुणधर ने हँसकर कहा— तो तुम्हारा सर्वसुलभ आखेट हूँ।"

"सच ? क्या पुरुष स्त्रियो के सुलभ आखेट हुआ करते है विशेपकर क्षत्रिय पति ?"

"मैं तो यही समझता हूँ। स्त्रियाँ अनायास ही पुरुषों शिकार कर डालती है—अपने नयन वाणो से।"

"एक ही का आखेट क्या वार-वार किया जाता है ? आखेट तो मैं उसी दिन आपका कर चुकी थी, जिस दिन रा से यहाँ उज्जयिनी आई थी।"

इसके वाद राजा-रानी अपनी रात को और भी सरस व विताने लगे। इसी रात और इसी समय विधवा रानी नयनाव अपने जार-प्रेमी कुवड़े कामदेव के साथ रति रग मे डूबी थ उसने कुवडे से कहा—

"अव कोई वाधा नही रही प्यारे ! तव तो मैं फूंक-फूंक कदम रखती थी।"

कुवडे ने पूछा—"तो क्या उसे हमारे प्रेम-मिलन का चल गया था ?"

"मैं तो यही समझती हू।" नयनावली ने कहा—" रात मैं तुम्हारे पास विलम्व से पहुँची थी, उसी रात के प्र को उसने सयम लेने की वात मुझसे कही थी ? तुम्हीं सोचो,

ाजा सदा मुझ मे ही बँधा रहता था, वह एकाएक विरक्त क्यो
ोगा ? लगता है, उसने हमे उस रात देख लिया था।"

कुवडा बोला—"खैर, अब यह बताओ कि अगर तुम उसे
ारने मे सफल न हो पाती तो क्या अपनी बात रखने के लिए
ंयम लेती ?"

"हाँ लेती।"

"लेती ? मुझे छोडकर चली जाती तू ?" कुवडे ने क्रोध से
नयनावली को एक लात जमाई।

रानी ने कुवडे का चरण पकड़कर कहा—

"इसी से तो कहती हूँ कि पुरुष वडे नादान होते है। मेरा
निश्चय तो सयम लेने से पहले ही उसे मारने का था। वही मैंने
करके भी दिखा दिया। यदि सफल न होती तो भी मैं उसे मारने
के लिए ही उसके साथ सयम लेती। मौका देख उसे मारकर
लौटती और तुम्हे लेकर उज्जयिनी से वाहर चली जाती।"

"तव तो वडी अच्छी तो तुम !" यह कह निर्लज्ज कुवडा
रानी से सट गया और अपने घिनौने होठो से उसने नयनावली
का चुम्बन लिया।

इन दोनो का गुप्त-प्रेम सर्वज्ञ के अलावा और कोई नही
जानता था।



६

मालवेश्वर गुणधर प्रतिभासम्पन्न और वीर तरुण थे। उनमे साहस की कमी नही थी। अपने अदम्य साहस और उत्साह के कारण वे अनेक राजाओं के लिए वन्दनीय बने तो प्रजावत्सलता के कारण जन-जन के आशा केन्द्र भी थे।

गुणधर का विशाल वक्ष, प्रचंड बाहु, पुष्ट जघन और तीक्ष्ण दृष्टि उनके व्यक्तित्व को अकर्पक बना देते थे।

मालवेश्वर गुणधर गजब के धनुर्धर थे। वे शब्दभेदी शर संधान मे निपुण थे। बाणो का तूणीर सदैव ही उनके कंधे पर पड़ा रहता था। इसके अतिरिक्त एक विशाल शूल भी उनके हाथ मे रहता था।

साम-दाम, दण्ड-भेद के साथ पाँचवें अंग पराक्रम का योग भी गुणधर राजा की राजनीति मे था। अनेक गुणो के आगार गुणधर मे एक दुर्गुण यह था कि वे आखेट को राजधर्म मानते और बडे शौक से आखेट करने जाते थे। इनसे पहले पिता यशोधर ने राज्य मे आखेट-निषेध की घोषणा करा दी थी। अब इन्होने पुन. आखेट की छूट दे दी तो मासभोजी क्षत्रियो को बड़ी प्रसन्नता हुई।

राजा गुणधर का एक अलग आखेट दल था। इसमे न केवल ही इन्होंने शिकारी कुत्ते भी सैकडो की संख्या मे पाल लिए थे

ागने वाले तथा झाडियो मे छिपे शशा, हरिण आदि का शिकार न कुत्तो के कारण सहज ही हो जाता था। क्योकि ये कुत्ते रिण-शशा की गध पाकर ही झाडियो मे घुमकर उनका शिकार र लेते थे।

गुणधर की रानी थी कुसुमावली। रानी कुसुमावली यौधेय श के राजा मारिदत्त की वहन थी। रानी परम रूपवती तो थी , पतिव्रता और शील गुण से सम्पन्न भी थी। वे अपने पति ा आखेट छुडाने के वहुत प्रयत्न करती थी, पर अभी तक सफल ही हुई थी।

राजा-रानी और राजा-प्रजा के सम्वन्ध वडे मधुर थे। सव ुखी थे। सव ओर अमन-चैन और सुख-शान्ति थी। राजा ाशोधर को दिवगत हुए कई वर्ष यो ही वीत गये। दिन जाते ार क्या लगती है ? गुणधर के सुशासन मे मालव की प्रजा यशो-धर को भूल-सी गयी थी। इतने वर्षों वाद भी राजा गुणधर सन्तानवान् नही हुए। रानी कुसुमावली की गोद अभी सूनी थी। पटरानी कुसुमावली के अतिरिक्त राजा गुणधर के अन्तःपुर मे और भी रानियाँ थी, पर सन्तान उनके भी अभी नही हुई थी।

कालान्तर मे पट्टमहिषी कुसुमावली ने गर्भ धारण किया। उसके उदर मे दो जीव एक साथ पल रहे थे। दो महीने वाद कुसुमावली को शुभ दोहद होने लगे। पति के आखेट से अरुचि हो गई। मास का देखना भी उसे अच्छा नही लगता था। उसे अव धर्मचर्चा ही सुहाती थी। एक दिन रानी ने अपना दोहद राजा के समक्ष प्रकट कर दिया—

"स्वामी! गर्भस्थ जीव के पूर्व सस्कारो के कारण गर्भवती की जो विशिष्ट इच्छाएँ होती है, वे दोहद कहलाती हैं।

"स्वामी ! यदि आप मेरा दोहद पूरा नही करेंगे तो मेरे गर्भ मे आपका जो अश वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । अत. आप मेरी........।"

"मै समझ गया !" राजा गुणधर ने बीच मे ही कहा—"पत्नी के दोहद की पूर्ति करने वाला पति भाग्यशाली होता है। तुम अपनी इच्छाएँ कह डालो ।"

रानी ने कहा—"स्वामिन् ! हमारी पाकशाला मे किसी के लिए भी मास न पकाया जाए । घर मे भी मास न आये । इसके अतिरिक्त आप शिकार खेलना भी छोड़ दे । राज्य मे अभयदान की घोषणा करवाएँ ।"

गर्भस्थ जीवो के प्रभाव के कारण राजा के विचार भी बदल गये और उसने आखेट करना छोड दिया । मास का बनवाना और खाना भी छोडा, तथा राज्यभर मे आखेट-निषेध की घोषणा करवा दी ।

प्रात. साय धर्म-चर्चा मे लीन रहते हुए रानी कुसुमावली [illegible] गर्भकाल पूरा करने लगी । नौ महीने से कुछ दिन ऊपर बीते तो रानी कुसुमावली ने एक पुत्र और कन्या—जुडवाँ बालक को जन्म दिया ।

गुणधर राजा ने पुत्र-पुत्री का जन्मोत्सव बडी धूम-धाम मनाया । फिर पति-पत्नी—दोनो ने विचार करके पुत्र का नाम अभयरुचि तथा पुत्री का नाम अभयमती रखा ।

पाँच-पाँच धाये दोनो बालको का लालन-पालन करने लगी। जब ये बालक कुछ बडे हुए तो इनकी रूपच्छवि और भी निखर पर आई । आश्चर्य की बात यह थी कि राजकुमार अभयरुचि

रूप अपने पितामह यशोधर जैसा था और राजकुमारी अभय-मती की शक्ल-सूरत गुणधर की पितामही चन्द्रमती से मिलती-जुलती थी।

अभयरुचि और अभयमती—दोनो भाई-बहन विद्याध्ययन करने लगे। गुणधर की अन्य रानियाँ भी पुत्रवती बन गई थी। जब कुमार अभयरुचि किशोरवय में पहुँचा तो गुणधर ने उसका युव-राज पद पर अभिषेक करने का विचार किया और राजपुत्री अभयमती का विवाह अहिछत्र के राजा के पुत्र से करने का निश्चय भी कर लिया।

राजा गुणधर को आखेट का त्याग किये हुए बहुत दिन हो गये थे। अत राजकुमार के युवराज पद पर अभिषेक के समय उसने अपने पुराने मित्रो, सामन्तो आदि को मास-भोज देने का विचार किया।

मास-भोज की योजना के साथ ही राजा का आखेट व्यसन जाग गया। उसने अपने शिकारी दल को सगठित किया और एक दिन राजा गुणधर पाँच सौ शिकारी कुत्तो, शूकरो तथा आखे-टको के साथ मृगो का वध करने वन की ओर चल दिया।

जब गुणधर राजा वन मे प्रविष्ट हुआ तो उसने वृक्षमूल मे बैठे एक मुनि को देखा। मुनिश्री को देखते ही गुणधर क्रुद्ध हो उठा और ठिठककर बडबडाया—

"अरे देखो, सवेरे-सवेरे ही अपशकुन हो गया। अब क्या शिकार खाक मिलेगा ? मुण्डित सिर और बिना नहाया, पसीने की दुर्गन्धि वाला यह श्रमण जाने कहाँ से आ मरा। खैर, कोई बात नही....मृगो का शिकार तो मै बाद मे करूँगा, पहले इस मनहूस मुण्डसिर का शिकार करूँ।"

न कुत्तो को ललकारा-छुछकारा। पर आश्चर्य हुआ कि शिकारी त्ते आगे बढने के बजाय जहाँ खडे थे, वही बैठ गये।

"अब मैं ही तुझे देखूँगा।" यह कह गुणधर राजा नग्न खड्ग कर मुनि की ओर दौडा। तब तक उक्त श्रावक लपककर राजा ौर मुनि के बीच आ गया और राजा का खड्ग पकड़ कर ोला—

"अरे-अरे, यह क्या करते हो? सब कुछ देखकर भी अन्धे ने हुए हो? देखते नही, ये कुत्ते बकरी की तरह सीधे बने हुए। अब भी तुम्हे अपनी हिंसा का थोथा घमण्ड है?

"राजन्! ये मुनि यदि तुम्हारी ओर टेढी नजर से देख लें ो अभी भस्म कर दे। जानते नही, ये कितने लब्धिधारी है? तो तुम्हे सत्पथ पर लाने के लिए ही बीच मे आ गया था। दि अहिंसा और तप का चमत्कार देखना चाहते हो तो प्रहार रके देखो। कुछ नही कर पाओगे। तुम्हारा इनकी ओर झप-ना उसी प्रकार था, जैसे सर्प का बच्चा गरुड की ओर झपटने ी मूर्खता करे। यह देखो, तुम तो फिर भी मनुष्य हो। कुत्तों ा नसीहत नही ले पाये तो इन वृक्षो को भी देख लो। इनकी ाया कैसी कैसी स्थिर हो गई है! न घटती है, न बढती है।"

श्रावक के वचनो से गुणधर प्रभावित व चमत्कृत हुआ। कुत्तो के अहिंसक बनने और वृक्षो की छाया के स्थिर होने का चमत्कार वह मौन-मूक बना देख रहा था। मुनि के मुखमण्डल र तप और अहिंसा की जो किरणे फूट रही थी, उनसे भी प्रभा-वित हुए विना गुणधर न रह सका। पर उसके मन का दुर्विश्वास और क्षोभ अभी नही मिटा। सो वह श्रावक का हाथ पकड़कर एक ओर हो गया और बोला—

"भद्र ! जो तुमने कहा, सो अपनी जगह ठीक है। ... बडे-बडे चमत्कार ऐन्द्रजालिक लोग करते हैं। तो क्या वे ... हो गये ?

"तुम नही जानते इस मनहूस ने मेरा क्या बिगाडा है। ... मेरा शकुन बिगड गया। तुम इनकी ऐसी प्रशसा जाने क्यों ... रहे हो ? ये मुनि लोग कभी तो नहाते नही। कैसी दुर्गन्ध ... शरीर से आती है। मुण्डित सिर और दुर्गन्धित तन वाले ... मुनि अमगल की मूर्ति है।"

राजा गुणधर की मूर्खतापूर्ण बातो पर श्रावक हंसने ... ज्ञानी का कर्तव्य है कि मूर्ख पर रोष नही करे, प्रेम ... समझाये। इसलिए श्रावक गुणधर को समझाने लगा। ... कहा—

"राजन् ! क्या स्नान करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता ... समस्त नगर के मल को समेटने वाली जो नाली होती है ... ही यह हमारा तन अशुद्धि का भण्डार है। चन्दन, अगर, ... आदि सुगन्धित और पवित्र पदार्थ, तभी तक पवित्र रहते हैं ... तक वे हमारे तन का स्पर्श नही करते।

"राजन् ! जो मुनि अपने मन से कषायो की अशुद्धि ... दूर करके भीतर से परम शुद्ध होते है, उनकी बाहरी अशुद्धि ... क्या देखते हो ? शरीर तो सभी का अशुद्ध है और यह ... कभी शुद्ध नही होता। मन के मैल की बात करो। जिसका ... पवित्र है, उसका तन भी अपवित्र नही होता।

"राजन् ! ऐसे तपस्वी मुनियो का स्वेद, लार ... पवित्र होता है। इनके पसीने के स्पर्श से असाध्य रोग ... छूमन्तर हो जाते हैं। जिन मुनि के चरणो की धूल से पाप ...

[क]ीचड दूर होती है, ऐसे इन मुनि को तुम्हें भक्तिभावपूर्वक प्रणाम [क]रना चाहिए।

"राजन् ! मेरी बात ध्यान से सुनो। मैं वताता हूँ कि ये [क]ौन है और क्या है ?"

इतना कह श्रावक ने हाथ पकडकर राजा गुणधर को वृक्ष की छाया मे वैठाया और स्वयं भी वैठ गया। अव वह मुनि के वारे मे गुणधर राजा को प्रारम्भ से वताने लगा। उसने कहा—

"राजन् ! ये सुदत्त नाम के मुनि भी आपकी ही तरह एक राजा थे। कलिंग जैसे विशाल राज्य को ठोकर मारकर इन्होंने [स]ंयम लिया तो क्या यो ही ले लिया ? राजा सुदत्त एक चोर को प्राणदण्ड नही दे पाये, जव कि न्यायाधिकरण का नियम ऐसा ही था। इन्होने सोचा कि राजा रहूँगा तो मुझे दण्डनीति भी अपनानी पडेगी। वस, इतनी-सी वात से द्रवित होकर राजा सुदत्त राजर्षि सुदत्त बन गये।

"राजन् ! एक दिन जो सुदत्त कलिंगराज थे, आज वही मुनि सुदत्त त्रिलोकीराज है। इन्हे आमोपधि, खेलोपधि, जल्लोपधि, विप्रोपधि, सर्वोषधि आदि—ऋद्धियाँ प्राप्त हैं। इनके अंगो को सर्प नही काटते। इन कुत्तों की तो औकात ही क्या है, सिंह, हाथी तथा अन्य हिंसक वन्य पशु भी इन पर आक्रमण नही करते। भक्तिभावपूर्वक इनके चरणो की सेवा करते हैं।

"राजन् ! ये मुनि यदि रुष्ट हो जाएँ तो आप क्या, इन्द्र, मेरु पर्वत और त्रैलोक्य को भी कंपित कर सकते हैं। इनको लब्धियो का चमत्कार भी सुनो। ये अपनी तेजोलेश्या से विश्व को क्षणमात्र मे भस्म कर सकते हैं; पर न तो करना चाहते हैं

और न करेंगे। क्योंकि ये सदा सर्वदा समतारस के सागर मे रहते है। न इनका कोई शत्रु है और न मित्र। ये प्रणाम क वाले से प्रसन्न नही होते और दुर्वचन कहने वाले से कभी अप्र नही होते।

"राजन्! इनकी वाणी सुनने और इनके दर्शन करने सिंह-वाघ भी अहिंसाव्रती हो गये हैं तो आप भी क्यो न अ उद्धार करें।"

वणिक् श्रावक की ये बाते सुनकर राजा गुणधर गद्गद गया। वह अपनी दुर्भावना पर बहुत पछताया और मुनि समीप पहुँचकर दण्डवत् प्रणाम किया तथा बोला—

"हे दयासागर! मै आपकी महिमा को जानता न श्रावक मित्र ने मेरी आँखे खोल दी है। मुझे क्षमा करो प्रभो यद्यपि मेरा अपराध बहुत भारी है, पर आप तो क्षमा सागर है।"

कुछ समय बाद ध्यान पूर्ण करके धीर-गभीर वाणी मे मु बोले—

"राजन्! तुम्हे धर्म-लाभ प्राप्त हो। अपने मन मे कि भी खेद न करो। मैं तुम्हे क्षमा करू, इसका प्रश्न तो तब है जब तुम मेरा कोई अपराध करते। तुमने मेरा बिगाडा ही है जो मैं तुम्हे क्षमा करू?"

मुनि सुदत्त के अमृतरूपी वचन सुनकर राजा गुणधर उ प्रति श्रद्धालु तो हुआ पर उसके मन मे हलचल होने ल उसने सोचा—'मुनि ऐसे क्षमाशील है कि मेरे ऐसे भारी अप को कुछ माना ही नही। ये कहते है कि मैंने इनका बिगाड़ा क्या है, जो ये मुझे क्षमा करे।' मैं इनके प्राण लेने पर

गया, यह क्या साधारण अपराध है ? यह तो महापाप है। इस भयकरतम पाप का दण्ड पाये विना मुझे शान्ति नही मिलेगी। मुनि मुझे कोई दण्ड देंगे नही, क्योकि ये महान है। पर मैं स्वय ही अपने को दण्डित करूँगा। जिस खड्ग को लेकर मैं मुनि की ओर झपटा था, उसी खड्ग से मैं अपना शिरोच्छेद करूँगा।'

राजा गुणधर जो कुछ चिन्तन कर रहा था, वह सब अन्तर्यामी मुनि जान चुके थे। उन्होने राजा से कहा—

"राजन्! अपने शिरोच्छेद का विचार मत करो। ऐसा तुम क्यो सोच रहे हो ? दुष्कर्मो का प्रक्षालन आत्मनिन्दा से होता है, आत्मघात से नही।"

इतना सुनते ही राजा व्याकुल होकर मुनि के चरणो में गिर पडा। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं था। 'मेरे मन की बात मुनि कैसे जान गये ?' राजा ने सोचा, 'इनकी महानता की तो सीमा ही नही है। मै कितना भाग्यशाली हूँ, जो आज इनके दर्शन हो गये।'

राजा ने श्रावक से पूछा—"मित्र! ये मुनि मेरे मन की बात कैसे जान गये ?"

इस पर श्रावक ने कहा—"यह तो कुछ भी नही। ये तो लोक-परलोक की बाते भी जानते हैं। कई-कई जन्मो की बातें भी बता देते है, चाहो तो पूछकर देख लो।"

राजा गुणधर ने विनयभाव से मुनि सुदत्त से पूछा—

"भगवन्! मेरे पितामह यशोध और पिता यशोधर दोनों ही बडे धर्मात्मा थे, वे मरकर कहाँ गये ? उनकी क्या गति हुई ? मेरे पिता के साथ ही मेरी पितामही चन्द्रमती भी मरी थी। वे

राजा के साथियो ने यह सुना तो अवाक् रह गये। वडे री मन से वे सव उज्जयिनी गये और राजा के सयम-संकल्प वात सवको सुनाई। समस्त नगरी मे यह वात वन मे लगी ग की तरह फैल गई। अन्तःपुर मे तो खलवली ही मच गई। स-जिस रानी ने सुना वह वही की वही गिर पडी। फिर सब ह दूसरी को उनके कार्य से उन्हे रोक-रोककर राजा के सयम कल्प की वात कहने लगी।

एक रानी ने दूसरी रानी के हाथ से तूलिका छीन ली और त्रफलक फेंककर कहा—

"अरी वहन! फेंक इसे। स्वामी तो अब काम-विरक्त हो ये है। अव तू किसके लिए यह चित्र वनायेगी?"

किसी ने किसी और रानी से कहा—

"बहन! अपने मुख का पराग पौछ डाल। पौछ दे यह जिन। अव मुखमण्डन से क्या होगा? प्राणेश्वर तो तप-मण्डन रजित हो गये है।"

कोई बोली—"अव यह वेणी क्यो गूंथ रही हो? स्वामी ो अव इसको देखेंगे ही नही।"

सभी रानियाँ अपने-अपने कार्य मे लगी थी। कोई वीणा के तार कस रही थी। कोई माला गूंथ रही थी। सव की सव एक दूसरी के कार्य को रोककर प्रलाप करने लगी। फिर सव की सव वहाँ वन मे पहुँची, जहाँ राजा गुणधर मुनि सुदत्त और वणिक् श्रावक के निकट वैठे थे।

राजकुमार अभयरुचि और राजकुमारी अभयमती ने सुना तो ये दोनो भी विकल-व्याकुल होकर वन मे पहुँचे।

नकी आँखो के सामने नाचने लगे। पूर्वजन्मो की स्मृति से ोनो ही भाई-वहिन मूच्छित हो गये।

सेवक-जन राजकुमार और राजकुमारी की ओर दौडे और नका शीतलोपचार करने लगे। थोडी देर वाद जव दोनों को ोश आया तो दोनो ने ही मुनि मे प्रार्थना की—

"भन्ते ! हमे भी अपनी शरण मे लीजिए। हम भी सयम ा पालन करेंगे। हम भी अव मोहजालरूपी आवरण को उतार र तपरूपी लक्ष्मी का मुख देखना चाहते हैं।"

यह सुन मुनिश्री सुदत्त ने राजकुमार अभयरुचि को सम-ाया—

"कुमार ! तुम्हारी व्यवस्था अभी तप करने योग्य नही है। ुम अभी वालक ही तो हो। अत. श्रावकव्रतो का पालन करते ुए जीवन को सार्थक करो।"

इसके वाद वणिक् श्रावक ने भी अभयरुचि को समझाया—

"राजपुत्र ! अभी तो तुम्हे राजधर्म का पालन करना ही उचित है। राजा को पहले अन्वीक्षिकी, अर्थात् विचार-विद्या की जानकारी अर्जित करनी चाहिए। इसके वाद धर्म, अर्थ और कर्म पुरुपार्थत्रयी को जानना चाहिए। फिर वार्त्ता-विद्या को जानना चाहिए। इसके अनन्तर चौथी विद्या दण्डनीति है इस विद्या से नीति-अनीति का निर्णय होता है।

"राजपुत्र ! लोक मे राजा का होना भी नितान्त आवश्यक है क्योंकि राजा जगत का आधार कहा जाता है।"

इस प्रकार श्रावक ने अभयरुचि को बहुत समझाया तो वह दु.खरूप राज्य को विमन होकर ग्रहण करने को तैयार हो गया। राजा गुणधर ने तो सयम विधि पूरी करके सयम का वरण किया

ा। ये सन्त जहाँ भी जाते, वही अमगलो का नाश हो जाता। समय मे ही बहार आ जाती। कभी ये सन्त किसी नगर के आश्रय मे ठहरते और कभी श्मशान मे रहकर कायोत्सर्ग रते।

पूर्वसस्कारो के कारण मुनि अभयरुचि और साध्वी अभयमती अनेक लब्धियाँ प्राप्त की। गुरु के साथ विहार करते हुए ये ब सन्त-सतीसघ योधेय देश की राजधानी राजपुर की ओर चल ये। राजपुर नगर गुणधर मुनि की ससुराल था। कुसुमावली ानी यही की थी। इस प्रकार यह नगर अभयरुचि मुनि व साध्वी भयमती की ननसाल था पर अब इनका कही कुछ नही था। सार का ममत्व और नाते-रिश्ते तो ये त्याग ही चुके थे। इन्हीं त्याग के कारण तो ये ससार-त्यागी थे।



रते थे तो ऐसा लगता था, मानो इन पक्षियो के वहाने यह
: मस्ती मे झूमकर कुछ गा रहा हो ।

इस पुर की रक्षा मुख्यत तो परमवीर और पराक्रमी राजा
रिदत्त का वाहुवल करता था पर गोपात इस नगर का पर-
अथवा प्राकार भी इतना सुदृढ और अभेद्य था, जो यहाँ
निवासियो को सुख-चैन की नीद सुलाता था। यहाँ का दुर्ग
ना विशाल और सुरक्षित था, जो राजा मारिदत्त के यश से
ण्डित ही था। इस दुर्ग के चारो द्वार मरकत मणियो के
रणो से ऐसे शोभायमान थे, जैसे मणिमय हारो से युक्त पुर-
सियो के मुख ही हो ।

यहाँ के भवन दो, तीन, पाँच, सात और नौ-नौ मजिलो के
। राजा मारिदत्त का राजमहालय तो दशाधिक खण्डो का
वराज इन्द्र के भवन जैसा था और पराक्रमी नरेश मारिदत्त तो
ानो साक्षात् देवराज ही थे ।

मारिदत्त राजा यदि वैभव मे देवराज इन्द्र थे तो दानवीरता
साक्षात् कर्ण । रूप मे वह कामदेव, कान्ति मे चन्द्र, दण्ड देने में
ौर शत्रुओं के वन को नष्ट करने मे प्रचण्ड दावानल थे ।

हाथी की सूंड जैसे मारिदत्त राजा के विशाल बाहु थे। वे
लशाली भट पुरुषो मे श्रेष्ठ योद्धा थे । ये नरेश प्रभुता, मंत्र
ौर उत्साह—इन तीनो राजशक्ति का पालन करते थे। उनके
त्र अनियारे और विशाल थे। उनका शब्दोच्चारण मेघगर्जन के
समान गभीर था ।

यौधेयनरेश मारिदत्त अपने ज्ञान-विज्ञान के तेज से यद्यपि
रकाशमान थे, तथा वे धर्म के मर्म को नही जानते थे। इस
दृष्टि से राजा मारिदत्त के चारो ओर अधकार ही अधकार था।

७

सुन्दर और शोभनीय देशो मे अग्रिम यौधेय नामक देश भरतक्षेत्र मे दूर-दूर तक विख्यात था। इस देश की स्थिति, प्रकृति छटा, वन-पर्वत, सरिता और उगते-लहलहाते खेतो को देखकर कवि कल्पना से ऐसा लगता था, मानो वसुन्धरा ने दिव्य वेश धारण किया हो। यहाँ की इठलाती नदियो मे पडती भँवरों को देखकर कविजन ऐसा कहते हैं कि कामिनियो के समूह हाव-भाव-विभ्रम दिखाते हुए चल रहे हैं।

गोधन से समृद्ध इस देश मे घी-दूध की बडी भारी प्रचुरता थी। यहाँ के ग्राम, नगर, पुर, जनपद धन-धान्य से पूर्ण थे। ऐसे यौधेय देश मे राजपुर नाम का नगर था, जो इस देश का राजनगर अथवा राजधानी था। इस महत्त्व से इसका राजपुर—राजा का पुर अथवा नगर नाम सर्वथा उपयुक्त और सार्थक था।

राजपुर के भवन रत्नो से जटित, मणियों से मण्डित और रजत-सुवर्ण से खचित थे। इन भवनो की जालियो के पञ्जर हीरकखण्ड से बने हुए सहस्रो रश्मियाँ छोडकर दर्शकों को चौंधिया देते थे। यहाँ के हाट-बाजार, राजपथ, वीथियाँ और खेत-खलिहान—सब कुछ मनोरम और अद्वितीय था।

राजपुर नगर सरस उपवनो मे घिरा ऐसा लगता था, मानों कामदेव के शरों से विद्ध हो। इन उपवनो मे पक्षी जब कलरव

करते थे तो ऐसा लगता था, मानो इन पक्षियो के बहाने यह पुर मस्ती मे झूमकर कुछ गा रहा हो।

इस पुर की रक्षा मुख्यत तो परमवीर और पराक्रमी राजा मारिदत्त का बाहुबल करता था पर गोपात. इस नगर का परकोटा अथवा प्राकार भी इतना सुदृढ और अभेद्य था, जो यहाँ के निवासियो को सुख-चैन की नीद सुलाता था। यहाँ का दुर्ग इतना विशाल और सुरक्षित था, जो राजा मारिदत्त के यश से मण्डित ही था। इस दुर्ग के चारो द्वार मरकत मणियो के तोरणो से ऐसे शोभायमान थे, जैसे मणिमय हारो से युक्त पुरवासियों के मुख ही हो।

यहाँ के भवन दो, तीन, पाँच, सात और नौ-नौ मंजिलो के थे। राजा मारिदत्त का राजमहालय तो दशाधिक खण्डो का देवराज इन्द्र के भवन जैसा था और पराक्रमी नरेश मारिदत्त तो मानो साक्षात् देवराज ही थे।

मारिदत्त राजा यदि वैभव मे देवराज इन्द्र थे तो दानवीरता मे साक्षात् कर्ण। रूप मे वह कामदेव, कान्ति मे चन्द्र, दण्ड देने मे और शत्रुओ के वन को नष्ट करने मे प्रचण्ड दावानल थे।

हाथी की सूंड जैसे मारिदत्त राजा के विशाल बाहु थे। वे बलशाली भट पुरुषो मे श्रेष्ठ योद्धा थे। ये नरेश प्रभुता, मंत्र और उत्साह—इन तीनो राजशक्ति का पालन करते थे। उनके नेत्र अनियारे और विशाल थे। उनका शब्दोच्चारण मेघगर्जन के समान गभीर था।

यौधेयनरेश मारिदत्त अपने ज्ञान-विज्ञान के तेज से यद्यपि प्रकाशमान थे, तथा वे धर्म के मर्म को नही जानते थे। इस दृष्टि से राजा मारिदत्त के चारो ओर अंधकार ही अंधकार था।

जहाँ शक्ति और पशुबल का अहंकार हो, यौवन का उन्माद और मिथ्याचारी धर्मगुरुओ के विचारो का प्रचार-प्रसार हो वहाँ ज्ञान का आलोक उसी तरह छिपा रहता है, जैसे बादलों के पीछे दिवाकर ।

राजा मारिदत्त भटका राही था । अपने पराक्रम से उसने प्रजा तथा सीमावर्ती देशो को प्रभावित कम—आतंकित अधिक किया था । जब वह अश्वारूढ होकर नगर मे निकलता तो घोड़ों के तीक्ष्ण खुरो से धरा को रौंद डालता । कभी वह गजारूढ होकर उमंग भरे चित्त से वन में भ्रमण करता । इसी तरह अज्ञानी राजा मारिदत्त शिकारी कुत्तो को लेकर वन मे जाता और तृणभक्षी पशुओ के वध की घात लगाता ।

जैसा राजा, वैसी प्रजा । राजा अज्ञानी और मदान्ध था तो प्रजा भी भोली थी । भोलापन मूर्खता का सहोदर ही समझो । संयोग से राजपुर की इस भोली प्रजा और अज्ञानी-दम्भी राजा को बहकाने भैरवानन्द नाम का एक कौल मतानुयायी धर्मगुरु आ गया था । राजा-प्रजा—दोनों ही इससे प्रभावित होते चले गये । दूसरो पर प्रभाव जमाने के लिए कुछ मलिन विद्या के चमत्कारो का प्रदर्शन करना बडी बात भी नहीं ।

मदारी कितने चमत्कारी होते हैं ! सबकी आँखो के सामने एक के दो बना देना, मुँह मे से गोला निकालना, आग का भक्षण करना आदि अनेक चमत्कार दिखाकर मदारी, बाजीगर अथवा ऐन्द्रिजालिक दर्शको का मनोरंजन तो करते है पर न तो अपना ही भला कर पाते है और न दर्शको का । ये चमत्कार आखिर कितनी देर टिकते है ? धर्म का चमत्कार ही टिका

है, जो अखण्ड और अनन्त है। यह क्या साधारण चमत्कार है कि धर्म से ही स्वर्ग और मोक्ष तक प्राप्त हो जाता है।

चमत्कार यदि मनोरंजन की सीमा तक रहे तब तो ठीक। कुछ गनीमत है। पर चमत्कार दिखाने वाला जब धर्मगुरु बनकर भोले लोगो के जीवन से खिलवाड करे तो वह बडा खतरनाक होता है।

भैरवाचार्य एक ऐसा ही खतरनाक धर्मगुरु था। उसका सम्प्रदाय कौल सम्प्रदाय कहलाता था और यह कौल मत की दीक्षा लोगो को दिया करता था।

भैरवाचार्य अथवा भैरवानन्द के रूप और चरित्र—व्यक्तित्व की एक झाँकी भी दें। वह त्रैलोक्य को भयाकुल करने वाला, असत्य का भण्डार और महापाखण्डी था। अपना प्रभाव जमाने के लिए वह भिक्षा हेतु राजपुर नगर मे द्वार-द्वार घूमता था। भिक्षा तो एक बहाना था। मुख्य बात अपने सम्प्रदाय का प्रचार ही था। इसीलिए जब कोई गृहिणी भिक्षान्न लेकर आती तो वह जौ के पाँच दाने या अँगूठे और तर्जनी की पकड़भर आटा लेता और कहता—

"कल्याणी! हम तो श्रद्धा के भूखे हैं। हमे अधिक नही चाहिए। हम भूख को जीत चुके है। इसलिए वायु का सेवन करके रहते है।"

लेकिन इस धूर्त की देह भैंसे और गेंडे की तरह मोटी थी। बिना खाये भला मास कैसे बढ़ता? पर पाखण्डियों की लीला ऐसी ही होती है।

भैरवानन्द अपने सिर ... ोभी ... े
दोनो कान ढके रहते थे। ... ेस

डंडा रहता था। इस डंडे को वह ऊपर उछालकर जल्दी से पकड़
लेता था। उसके गले मे एक विचित्र योग-पट्ट पडा था। उसके
पैरो मे चमचमाते खडाऊँ थे। उसके पास तड़-तड शब्द करने
वाला एक सीग भी था ।

ऐसी विचित्र वेश-भूषा मे भैरवानन्द जब भिक्षा के लिए
किसी के द्वार पर जाता तो उसे देखने अनेक जन इकट्ठे हो
जाते। इसी अवसर पर वह अपने मुँह अपनी प्रशसा करता।
वह कहता—

"मेरे सामने ही चारो युग बीत गये। मैं अभी तक सशक्त
और पुष्ट हूँ। बुढापा मुझे देखकर काँपता है। इसमे आश्चर्य मत
करो। भक्तो, मै आखिर तो कल्पधारी हूँ।

"नल, नहुप, वेणु, मान्धाता तथा जितने भी राजा-महाराजा
और चक्रवर्ती-वासुदेव हुए, वे सब मेरे सामने ही हुए और मेरे
देखते-देखते ही इस धरा मे समा गये। मैंने तो राम-रावण युद्ध
। देखा है।

"अरे भक्तो ! ये तो बीती बातें है। अब मैं क्या कर सकता
हूँ, सो सुनो। मैं चाहूँ तो सूर्य के विमान को अभी रोक दूँ।
चा तो चन्द्र को चन्द्रका-विहीन कर कर दूँ। जगत की सभी
विद्याएँ और तन्त्र-मत्र मेरी मुट्ठी मे है।"

कौलाचार्य भैरवानन्द का अड्डा रूप आधम नगर के बाहर
वन मे था। वहाँ उसके अनेक साथी कौल अनुयायी रहते थे।
यही भैरवाचार्य मास-मदिरा का भोजन करता और डकार लेकर
पेट पर हाथ फेरता। अपनी निस्पृहता दिखाकर लोगो को प्रभा-
वित करने वह भिक्षा के लिए द्वार-द्वार जाता और जौ के पके
दाने मात्र ही लेता। इस तरह भैरवानन्द की चर्चा अब घर-घर
होने लगी।

कोई कहता—"पहुंचा हुआ सिद्ध है।"

"तभी तो बिना खाये रहता है।" दूसरे ने पुष्टि की—"अन्य सम्प्रदायो के साधु तो खूब आहार लेते है और यह तो गृहस्थ का मान रखने के लिए नाम मात्र को लेता है।"

एक अन्य बोला—"लेकिन इसके पास धन तो बहुत है। इतना धन इसके पास आता कहाँ से है ?"

पहले ने बताया—"तुम तो बुद्धू ही रहे। जिसके पास दुर्लभ विद्याएँ हो, वह क्या नही कर सकता ? यह तो कुछ भी नही। यदि कौलाचार्य भैरवानन्द चाहे तो चुटकी बजाकर कुबेर का कोष उठाकर ला सकता है।"

एक अन्य ने अपना अनुभव बताया—

"भाग्य को बदलने की शक्ति भी तो इसमे है। दस साल मेरे ब्याह को हो गये और संतान नही हुई। अब इसी के चमत्कार से मेरी पत्नी का पाँव भारी है।"

"सच ?" सब ने पूछा—"इसने यह कैसे कर दिया ? भई, है तो चमत्कार ही।"

"सो तो है ही।" पत्नी के पाँव भारी वाले व्यक्ति ने कहा—"यह जगत चमत्कार को ही नमस्कार करता है। बस, मुझे एक अजापुत्र चण्डमारी देवी को बलि चढाना पडा। देवी खुश हो गई और मेरी पत्नी को उसने गर्भवती कर दिया।"

"मैं नही मानूंगा। यह तो तीर मे तुक्का है।" इनमे से एक ने कहा—"इसी नगर की एक महिला **पाँच बकरो** की बलि चण्डिका देवी को दे चुकी है। उसके तो **अभी तक मूषक** भी नही हुआ।"

बस, इसी तरह जहाँ चार आदमी

चर्चा करते । धीरे-धीरे यह नगर-चर्चा राजा मारिदत्त के
मे भी पडी । जिसके सामने चारों युग बीत गये, जो
है और जो अनेक दुर्लभ विद्याओ को जानता है, और
जो सूर्य-चन्द्र की गति तक को रोक सकता है, उस भैरवा
को देखने की इच्छा किसे न होती ? देखने भर की
नही, भैरवानन्द की विद्याओ से भौतिक सुखो की वृद्धि के
राजा मारिदत्त उत्सुक हो गया ।

राजा मारिदत्त ने अपना एक मत्री कौलाचार्य भैरवान
पास भेजा । मंत्री ने कहा—

"स्वामिन् ! जैसे सूर्य बादलो की ओट मे नही छिपता,
तरह आप भी नही छिप सके । हमारे महाराज आपके दर्शन
लिए बहुत उत्सुक है । चलकर उन्हे दर्शन दीजिए ।"

भैरवानन्द ने एक हुंकार भरकर कहा—

"मत्री ! तुम्हारा राजा अहंकारी है । हम तो शुरू से
हारी है । तुम्हारा राजा हमे बुलाना चाहता है और स्व
आ सकता ? यदि वह राजा है तो तुम्हारा है । मेरा कोई
नही ।

" त्री ! अकारण मैं किसी का अनिष्ट नही करता ।
मैं चाहूं तो यही बैठे-बैठे तुम्हारे राजा को भस्म कर
और यदि प्रसन्न हो जाऊँ तो जाने उसे क्या बना दूं । जा
जा, हम किसी के पास नही जाते ।"

भैरवानन्द की धमकी सुनकर मत्री भयभीत हो गया ।
वह चतुर था, सो बात बनाकर बोला—

"स्वामिन् ! आप हमारे राजा पर प्रसन्न ही होइये ।
कारी तो वे बिल्कुल भी नही । वे तो स्वय आपके पास
थे । पर आपको कष्ट देने का कारण यह है कि वे अपने भवन

राजसभा को आपके चरणो मे पवित्र कराना चाहते हैं। भला राजसभा की भूमि यहाँ कैसे आ सकती है ?

"भगवन् ! अनुग्रह करे और अपने चरणो के स्पर्श से राजसभा को पवित्र करें ।"

मन्त्री की चतुराई काम दे गई। भैरवानन्द ने अपना डडा सम्हाला और बोला—"चलो, हम चलते हैं। अपने भक्तो का मान बढाना हमारा कर्तव्य है।"

दरअमल भैरवानन्द का उद्देश्य राजा मारिदत्त को कौलानुयायी बनाकर उससे अपनी स्वार्थ सिद्धि करना ही था। वह तो जाने कब से इस अवसर की तलाश मे था कि राजा मेरा अनुगामी बने। इसलिए राजा का बुलावा उसके लिए था तो वरदान, पर 'मन-मन भावे, शीश हिलावे' की कहावत तो बहुत पुरानी है। अपनी प्रभुता का प्रभाव जमाने के लिए ही भैरवानन्द ने मन्त्री से स्वयं न जाकर राजा को ही अपने पास बुलाने की बात कही थी।

मंत्री ने अपने चातुर्य से भैरवानन्द के भीतर की इच्छा भी पूरी कर दी और ऊपर से उसका मन भी बढाया। मन्त्री ने भैरवानन्द से रथ मे बैठने का आग्रह किया तो वह बोला—

"अरे भाई ! हम तो आकाश मे उडते मैं
तुम्हारे राजा को भी ऐसी विद्या सिखा
यात्रा किया करेगा। भला, मैं इस
पैदल ही चलूंगा।"

फिर तो मन्त्री भी उसके ... है
सारथी से कहा—

"तुम रथ लेकर अकेले ...
आचार्यजी के साथ पैदल ...

जब हठयोगी भैरवानन्द झूमता हुआ चला तो ... स्त्रियाँ खडी हो गई। पुरुष भी भक्तिभाव से उसे देखते ... प्रणाम करने लगे। वह हाथ उठाकर सबको आशीर्वाद देता हुआ चल रहा था।

भैरवानन्द जब राजसभा के द्वार पर पहुंचा तो राजा मारिदत्त सिंहासन से उठा चला आया और छड़ी की तरह ... कौलाचार्य के चरणो मे लेट गया। कौलाचार्य ने राजा ... आशीर्वाद दिया, तब राजा उठा, फिर तो राजा ने ... सम्मान से पूजार्हों के अग्रणी आसन पर भैरवानन्द को ... और कौलाचार्य की स्तुति की—

"हे देव! मेरे अहोभाग्य कि आपने मेरा नगर और ... राजसभा पवित्र की। आप धन्य है। अनेको विद्याएँ आपमें मे है। आप भूत, भविष्य, वर्तमान—त्रिकालद्रष्टा है।

"भगवन्! मुझ पर प्रसन्न होइए। मेरे राज्य मे और ... मे क्या होने वाला है, सो बताने की कृपा कीजिए।"

राजा मारिदत्त को इस तरह अपने प्रभाव मे आया ... भैरवानन्द मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सोचा, 'अब काम बनेगा। मैं जैसा चाहूंगा, राजा को उसी करवट बैठा ...

इस प्रकार मनमोदक खाता हुआ भैरवानन्द ऊपर ... प्रसन्नता प्रकट करता हुआ राजा से बोला—

"राजन्! हम तुम पर प्रसन्न है और तुम्हें ... प्रसाद देंगे।

"राजन्! मेरे लिए असभव नाम की कोई चीज ... मैं तुमको विद्याधर बना सकता हूं। तुम विद्याधरों की आकाश मे उडने लगोगे। मैं तुम्हारा यौवन भी स्थिर कर ...

। मैं क्या नही कर सकता । अब तुम स्वय ही सोचकर यह ताओ कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ ।"

राजा ने जब योगी भैरवानन्द की बातें सुनी तो उसे ऐसा गा कि साक्षात् कल्पवृक्ष ही मेरे सामने आ गया है । राजा ने ोचा, 'मुझे सभी तरह के भौतिक सुख प्राप्त हैं । कही कोई कमी ही है । अब आकाश मे उडने की विद्या प्राप्त कर लूँ तो बस री सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो सकेगी ।'

यह सोच नरेन्द्र मारिदत्त ने योगी से कहा—

"भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो आकाश मे उडने ी विद्या दीजिए । मेरे लिए वह दिन कितना आनन्दप्रद होगा, ब मैं आकाश-मार्ग से द्वीप-द्वीपान्तरों को देखूँगा ।"

भैरवानन्द बोला—"राजन् ! यह तो बहुत छोटी बात है । र, मैं तुम्हे वह विद्या दूँगा कि तुम आकाश के सातवें स्तर सातवे आसमान) पर चल सकोगे ।

"राजन् ! यह तो तुम जानते ही हो कि आकाश-मार्ग का बसे ऊँचा स्तर सातवाँ है । इस स्तर पर गरुड उडते है । उडने ालो मे गरुडो की जाति सबसे वेगशाली है । मैं तुम्हे भी गरुड़ ी भाँति उडने योग्य बना दूँगा । लेकिन इसके लिए तुम्हे कुछ रना होगा । बिना किसी टीका-टिप्पणी के श्रद्धापूर्वक मेरी बातें ाननी होगी ।"

राजा मारिदत्त पूरी तरह से योगी भैरवानन्द के प्रभाव में ा गया । अब वह भैरव के कहने से कुँए मे भी गिरने को तैयार ा । सो उसने कहा—

"भगवन् ! आपके कहने से मैं सब कुछ करने को प्रस्तुत

हूँ; कुएँ मे गिरने को भी। आप आज्ञा कीजिये कि ग…
गमन की शक्ति अर्जित करने के लिए मुझे क्या करना है"

योगी भैरव बोला—

"राजन् ! कुएँ मे गिरोगे तो फिर सातवें स्तर प…
उड़ोगे ! खैर, मैं तुम्हारी श्रद्धा-भावना से बहुत प्रसन्न हूँ।
तुम पर माँ चण्डिका अवश्य प्रसन्न होंगी। ध्यान से सुनो
तुम्हे क्या करना है।"

योगी भैरवानन्द कुछ देर के लिए मौन हो गया और
अस्पष्ट मन्त्र पढने लगा। फिर उसने राजा से कहा—

"मिल गया। मिल गया। मिल गया, राजन् ! मिल ग…
हो गया, हो गया, तुम्हारा कल्याण हो गया।"

यह कह भैरव पुन. मौन हो गया और आँखें बन्द क…
कुछ देर बाद उसने आँखे खोली और राजा मारिदत्त को
देखने लगा। फिर बोला—

"राजन् ! तुम्हे गगन-गमन की शक्ति प्राप्त होगी।"

इतना कह भैरव पुनः मौन हो गया। राजा मारिदत्त…
हुआ था। उसने साहस करके पूछा—

"किन्तु भगवन् ! आपने तो कहा था कि मुझे कुछ क…
लिए आप बतायेंगे। मुझे क्या करना है, यह बताइए प्रभो

"भगवन् ! मिल गया-मिल गया, आपने कहा, सो …
क्या रहस्य है ?"

भैरव बोला—"हाँ तो सुनो राजन् ! चण्डमारी …
चण्डिका देवी की स्वीकृति मिल गई है कि मैं तुम्हें वह …
दूं जो कार्य तुम्हे आकाश-गमन मे समर्थ बनने के लिए क…
देवी का यही आदेश मुझे मिल गया।

"राजन् ! ध्यान से सुनो । तुम मेरे अलावा किसी की बाते [न] मानोगे । तुम्हारे परिवार के लोग यदि मेरे आदेशो के विरुद्ध [कु]छ भी कहे तो उनकी बाते सुनोगे भी नही ।"

"यही होगा ।" राजा ने कहा—"मेरे परिवार का कोई कुछ [भी] बके, बकता रहेगा । मुझे तो श्रद्धापूर्वक आपके आदेशो का [पाल]न करना है । आप आज्ञा तो करे ।"

योगी बोला—"राजन् ! शास्त्र रीति से तुम्हे चण्डमारी [देवी] का पूजन करना है । इस पूजाविधि के सम्पन्न होते ही तुम्हें [सि]द्धि मिल जायगी । पूजाविधि मैं तुम्हे बताता हूँ ।

"राजन् ! तुम सभी प्रकार के जीवो के एक-एक जोडे से [देवी] का मण्डप भर दो । अर्थात् जलचर, थलचर, नभचरो के [नर]-मादा—एक-एक जोडा लो । इस प्रकार जब सभी तरह के [पश]ु-पक्षी एकत्र हो जाएँ तो एक जोडा मनुष्य का भी लेना । [मन]ुष्य-युगल ऐसा हो, जो अपनी आयु पूर्ण न कर पाया हो । [इस] प्रकार तुम लाखो इकटठे हुए जीवो का बलिदान देवी के [लि]ए करो तो चण्डमारी देवी सहित मैं भी तुम पर प्रसन्न हो [जा]ऊँगा और तुम्हे आकाश-गमन की सिद्धि मिल जायगी ।

"राजन् ! बलिदान से सब कुछ सभव है । असख्य जीवों [क]ी बलि पाकर देवी तुम्हे गगन-गमन की शक्ति ही नही देगी, [तु]म्हे अमरत्व भी प्राप्त होगा । फिर तो विद्याधर भी तुम्हारी [से]वा करने लगेंगे । तुम्हारे खड्ग मे ऐसी ज्योतिर्मय शक्ति आ [ज]ायेगी कि तुम अजेय बन जाओगे ।"

इतने आकर्षणो के जाल मे राजा फँस गया । कौलाचार्य के [व]चनो को उसने शिरोधार्य किया । राजा को यह विश्वास हो गया

कि कौल सम्प्रदाय के आचार्य भैरवानन्द ने जो कुछ क
उसका अक्षर-अक्षर सत्य है ।

राजा मारिदत्त ने भैरवानन्द के सम्मुख ही अपने अ
को आदेश दिया—

"वनो, पर्वतो और सरिताओ से पकड-पकड कर पशु
लाओ । हर जाति का एक-एक जोडा अवश्य हो । कबूतर,
कौआ, ना, मोर, गिद्ध, चील, मुर्गा, बतख सभी पक्षी ला
कबूतर तो कई तरह के होते है । ऐसे ही अन्य पक्षियो की
कई-कई जातियाँ होती है । सभी का एक-एक जोडा पकड ल
पहाडो-वनो मे ऐसी रग-विरंगी सैकडो चिडियाएँ मिल
जिनके मैं नाम भी नही जानता—ढूँढ-खोजकर सभी ले आ

"और सुनो ! नदियो से मछलियाँ, कच्छप, मकर, मे
ये सभी पकड लाना । बहुत से पक्षी तो तुम्हे जलाशय के
ही मिलेंगे, जैसे—सारस, बगुले, टिटहरी, जल-कुक्कुट
पशु भी सब लाने हैं । साँप-छछूँदर और केंचुओं को
छोडना । चीटी-चीटा भी ले आना । ततैया, भौंरे, मि
पकडनी है । चिमगादड और गिलहरी भी लानी है ।
महिष, वृषभ, वत्स, हरिण, शशा, पाडा, चीनग, नी
साही, शृगाल—इन सबका भी एक-एक जोडा लाना है
बात अच्छी तरह से समझ लो । जगत मे जितने भी प्र
चाहे वे जलचर-थलचर-नभचर कैसे भी हो, सभी लाने है
मे मानव-युगल का प्रबन्ध करूँगा ।"

राजा के आदेश-पालन की भाग-दौड होने लगी ।
भैरवानन्द राजा से विदा लेकर अपने स्थान पर गया ।
उठते उसने राजा से कहा था—

"राजन् ! जब सब जीव इकट्ठे हो जाएँ तब मैं अपने अनुयायियो सहित चण्डमारी देवी के मन्दिर मे पहुँच जाऊँगा और मैं ही विधि-विधान से बलिदान कराऊँगा।"

राजा के आदेश से काले-कलूटे वधिक और चिडीमार जो साक्षात् यमदूत से लगते थे—पशु-पक्षियो को पकड-पकड़कर लाने लगे और उन्हे एक बाडे मे, जो देवी के मन्दिर के निकट ही बना था—इकट्ठे करने लगे।

राजा मारिदत्त की सभा मे अनेक धर्मप्रेमी, सज्जन और नीतिज्ञ-शास्त्रज्ञ विद्वान् भी थे। उन्होने अपना कर्तव्य समझकर राजा को कुमार्ग पर जाने से रोका और इस प्रकार समझाया—

"राजन् ! राजा को तो स्वभाव से ही दीनो का रक्षक होना चाहिए। जो राजा अपनी प्रजा का रक्षण नही करता और अपने ही हाथो से उसका विनाश करता है, वह नरक का अधिकारी होता है। आपके राज्य के वनो मे रहने वाले पशु-पक्षी भी तो आपकी ही प्रजा है। यह योगी तो महापापी है। इसकी बातो मे मत आइए। यदि आप आकाश मे उडने भी लगे तो भी आपको धरती पर आना पडेगा।

"राजन् ! हिंसा से तो आज तक किसी का कल्याण नही हुआ। आप जाने इसकी बातो मे कैसे आ गये ? जो भी पशु-पक्षी आपने इकट्ठे किये है, उन्हे मुक्त करा दीजिए। ये प्राणी आपको आशीर्वाद देगे।"

राजा को त्याग की ये बाते अच्छी नही लगी। उसने कहा—

"तुम लोग या तो मूर्ख हो, या धूर्त हो।
कि मैं और भी अधिक शक्तिसम्पन्न बनूं।

करता हूं। भविष्य मे मुझसे ऐसी बातें मत करना। भैरवानन्द मेरे धर्मगुरु है। उनके विरुद्ध चलने की मै सोच भी नही सकता।
बेचारे प्रजाजन चुप हो गये।

  

चण्डमारी अथवा चण्डिका राजा मारिदत्त की कुलदेवी थी। उसका विशाल आयतन राजपुर नगर की दक्षिण दिशा मे एक निर्जन स्थान में बना था। उस देवी का रूप अत्यन्त भयानक और साक्षात् वीभत्स रस की ही मूर्ति था।

जैसे दूज का चन्द्रमा दोनो सिरो पर नुकीला होता है, उसी तरह देवी की दाढे नुकीली और विकराल थी। उसके गले पर मुण्डो की माला पड़ी थी। उसके स्तनों पर सर्प लिपटे हुए थे। उसकी तीन आँखें थी। उनमे अग्नि की ज्वाला के समान चिनगारियाँ फूट रही थी। उसकी जीभ बहुत लम्बी बाहर को निकली हुई थी, जो लाल पत्थर की और रक्त से लथपथ थी। उसके कपोल चर्बी से लिप्त थे। उसके तन की आकृति मांस रहित—पंजर मात्र थी और बहुत भयकर लगती थी। [illegible] उसकी देह पर मरघट की राख लिपटी थी।

उसके केश जौ के तीकुर की तरह ऊपर को उठे थे, और दीखने मे बडे कर्कश थे। मानो कौए ने अपना घोंसला बनाया हो। उसकी भुजाओ के आभूषण मरे हुए मनुष्यो की [illegible] से बने थे। उसके नेत्र बडी-बडी कौड़ियो से बने थे, जिनमें [illegible] पत्थर के गोलक जडे थे, जो बडे ही भयकर लगते थे। उसका मुख मांसभक्षण के लिए सदा खुला रहता था। उसके हाथों मे हड्डियो का त्रिशूल, नर-मुण्ड, अस्थि-खड्ग [illegible] थे। साक्षात् मारी चण्डमारी की वीभत्सता और भयकरता का [illegible] नहीं किया जा सकता था।

मन्दिर का स्थान भी अति बीभत्स और घिनौना था। दीवारे रक्तरजित थी। शिखर पर बाघ की पूँछ की ध्वजा लहरा रही थी। जहाँ-तहाँ माँस के छीछडे पडे थे। पास मे ही एक वाडा था, जिसके चारो ओर काँटो की बाड थी। उसमे वलिदान के लिए वकरा, शूकर, रीछ, हिरन, हाथी, घोडे, वृषभ, गधे, ऊँट, शशा आदि चौपाये और मोर, हस, नीलकठ, उल्लू, काक आदि अगणित प्रकार के पक्षियो के जोडे एकत्र थे।

वलिदान का नियत दिन आ गया। राजा मारिदत्त ने अपने सेवक नर-युगल की खोज मे भेज दिये थे। अब इसी की देर थी। ज्यो ही नर-युगल आये कि वलिदान का कार्य शुरू हो। राजा मारिदत्त, योगी भैरवानन्द और उसके अनुयायी मन्दिर के प्रागण मे एकत्र हो चुके थे। वे सब मदिरा पीकर नाच-गा रहे थे।

अधविश्वासी महामूढ राजा मारिदत्त देवी के सम्मुख आया और दोनो घुटने टेक तथा दोनो हाथ जोड देवी से इस प्रकार प्रार्थना करने लगा—

"हे अम्ब! मै तेरी शरण हूँ। परमेश्वरी! मेरे पापो का हरण कर, मुझे मनोवाछित प्रदान कर।"

राजा ने देवी की प्रार्थना कर राजसेवको से कहा—"क्या अभी तक कोई सुलक्षण नर-युगल नही मिला? तुम लोग करते क्या हो? जाओ, जैसे भी हो, जहाँ भी हो, वलि-पूजा के लिए लक्षणवान नर-युगल को पकडकर लाओ।"

□

८

आचार्य सुदत्त चतुर्विध श्रमणसंघ के साथ विहार करते हु
राजपुर नगर के नन्दनवन मे आये। यह राजोद्यान नन्दनव
विशाल और मनोहारी था। यहाँ के वृक्षों की मणना तो दूर उ
प्रकारो का वर्णन करना ही कठिन है। पीपल, पाकर, व
गूलर, शीशम, अर्जुन, हिंताल, अशोक, देवदारु, अंजीर, आ
आदि अनेको प्रकार के अगणित वृक्ष इस उपवन मे थे। व
स्तम्भो की शोभा देखते ही बनती थी।

हरी घास के चौगान ऐसे कोमल और नयनाभिराम थे
धरा-वधूटी की हरी साडी ही मालूम पडते थे। पुष्प-पादपो
पँचरगी फूल खिले थे, जिन पर रग-बिरगी तितलियाँ घूम र
थी। काले भौरो की गुन-गुन संगीत की मधु-तान छेड रही थी

बीच-बीच मे लतामण्डप और जो जलविहार कुण्ड बने
उनके घाट-सोपानो का सौन्दर्य मन को मोह लेता था।
सरोवरो मे जो नीर भरा था, उसे देखकर ऐसा लगता था, मा
निरभ्र-नीलाभ आकाश ही नीर की जगह समाया हुआ है
इन्दीवर, रक्त, पीत और श्वेत कमलो के पुष्पो पर बैठे भौ
अठखेलियाँ कर रहे थे। वृक्षो पर बैठे पक्षी गा-गाकर मानो
कहते प्रतीत होते थे कि जो हमारी तरह सुखी और मुक्त वि
होगा, वही हमारी तरह मस्ती मे गा सकता है। संक्षेप मे
उपवन मदन की भूमि और कामिनियो और अभिसारिका

आकर्षण था। यहाँ सुगन्ध, सगीत, आनन्द और पशु-पक्षियो का मधुर कलरव होते हुए भी एकान्त की शाति और समाधि का साम्राज्य था।

ऐसे सुन्दर नन्दनवन मे आचार्य सुदत्त पधारे थे। उनके साथ मुनि गुणधर और मुनि अभयरुचि एव साध्वी समुदाय के साथ श्रमणी अभयमती भी थी। कामदेव को जीतने वाले मुनि सुदत्त ने शिष्य-मुनियो से कहा—

"हे मुमुक्षुओ! यहाँ पेडो से पत्र और फल टूट रहे है। हरी घास दूब आदि अधिक है, तथा हमारे आवागमन से पक्षियो को भय व विघ्न भी होता है। अत ऐसे इस उपवन मे मुनि के ध्यान-योग-विश्ववत्सलता की अखड साधना कठिन लगती है। अत यह स्थान साधना के योग्य नही प्रतीत होता।

"मुनियो! शम, दम और अभय की साधना के लिए हमे श्मशान के एकान्तवास मे चलना चाहिए।"

इतना कह आचार्य ने श्मशान की ओर प्रस्थान किया। अन्य मुनि भी उनके साथ गये। यथासमय सब के सब राजपुर नगर के बाहर एकान्त खण्डहर, श्मशान आदि स्थान पर पहुँच गये।

राजपुर का श्मशान यमराज की गोचर ही था
का दृश्य मानो यह कहता था कि मनु र
उसकी शक्ति और अहकार का जो
रहे हो।

यहाँ शृगाल, भूत-प्रेत,
साम्राज्य था। फल-हीन, सूखे

का बसेरा था। इनकी बीट से वृक्ष के नीचे की भूमि सफेद रंग से रगी थी।

कौओ की कर्कश आवाजे कानो के परदे फाड रही थी। हू-हू करते शृगाल अधजली खोपड़ियों को ले-लेकर भाग रहे थे। ठौर-ठौर चिताएँ जल रही थी। भूमितल पर अनेको पक्षियों के पंख पडे थे। जीव की यात्रा का तो नही, पर उसके शरीर की यात्रा का अन्त यही तक था।

ऐसे भीषण-बीभत्स श्मशान मे देवो द्वारा पूजित मुनि सुदत्त आदि ने शुद्ध भूमि देखकर स्थान ग्रहण किया। इसके बाद मुनियों ने आचार्यश्री से भिक्षा हेतु नगर मे जाने की अनुमति मांगी। तब सब की अनुमति-सहमति से बालमुनि अभयरुचि और बाल-साध्वी अभयमती अन्य साध्वियों के साथ भिक्षा के लिए नगर की ओर चल दिये।

इन दोनो क्षुल्लक साधको का रूप मन को मोहने वाला था। इनके गात्र शुभ लक्षणो से सम्पन्न थे। इनके अधरों पर सदा ही निर्मल हास्य बिखरा रहता था।

बालमुनि अभयरुचि और बालसाध्वी अभयमती स्वजन पर-जन की भावना से रहित, दयारूप और मद-मानादि को जीतने वाले थे।

ये श्रमण-श्रमणी जब नगर मे प्रविष्ट हुए तो ... मारिदत्त के क्रूर सैनिको की गीधदृष्टि उन पर पड़ी। ... भैरवानन्द ने जो शुभ लक्षण बताये थे, वे लक्षण बालमुनि अभयरुचि व बालसाध्वी अभयमती के शरीर, हस्त, मुख, नेत्र आदि पर विद्यमान थे। दिव्य तेजस्वी मुखमुद्रा, विशाल ललाट, ...

को चारो ओर से घेर लिया। इन्हे बीच मे करने के बाद नग्न खड्गधारी एक सैनिक ने कहा—

"बालको! तुम्हारी मृत्यु तुम्हे हमारे हाथो मे सौप रही है। तुम भी भाग्यशाली हो, जो आज देवी चण्डमारी का भोग बनकर सद्गति प्राप्त करोगे। राजा मारिदत्त आज देवी के निमित्त तुम्हारा बलिदान करेगे।"

यह कह क्रूर सैनिको ने इस सुकुमार युगल को पकड़ लिया और चण्डमारी देवी के आयतन की ओर ले चले। साथ की अन्य श्रमणियो व नगर-निवासियो ने जब यह दृश्य देखा तो वे चकित-भ्रमित से देखने लगे। एक श्राविका ने आँखो मे आँसू भर कर कहा—

"हाय! ये बालक आज मारे जायेगे। इनका रखवाला कोई नही? यदि इनके माता-पिता या गुरुजी यहाँ होते तो इन वधिको की क्या हिम्मत थी कि इनको छू भी लेते।"

एक बोली—

"अरी बहन, ये भला मानव कहाँ से आये! ये तो स्वर्ग के देवता ही धरती पर उतर आये हैं ... इन्हे मारेगा तो स्वय ही नष्ट हो जायगा। ... की बुद्धि पर परदा डाल दिया है।"

एक वृद्धा ने अपने

"अरे मेरे पुत्रो!

मुझ बुढिया के प्राण

... मैं ...

"भाइयो ! चलो, हम राजा के पास चलते हैं। देखें राजा इन्हें कैसे मारता है।"

फिर तो नर-नारियो की भीड मुनि अभयरुचि और साध्वी अभयमती के पीछे-पीछे चलने लगी। सैनिक 'हटो, हटो, रास्ता छोडो, भीड़ मत करो' की आवाजे देते हुए इन दोनो को लिए जारहे थे।

मुनि अभयरुचि और अभयमती दोनो प्रसन्न, अनाकुल और शान्त थे। मुनि अभयरुचि ने साध्वी अभयमती से कहा—

"आर्या भगिनी ! मृत्यु से डर तो नही रही ? घबराना नही।"

"मैं क्यो घबराऊँगी आर्य ?" अभयमती ने कहा—"पूर्व भवो मे हमने जिस तरह की पीडा-मृत्यु पाई है, उसे न तो मैं भूली हूं और न तुम। यह तो कुछ भी नही। आज तो हमारी परीक्षा है...।"

"ठीक कहती हो साध्वी !" मुनि अभयरुचि ने कहा—"अपने मन को तीर्थंकर की शरण मे रमाओ। धर्म की शरण लो। यही तो अवसर है। अगच्छेदन, अग्निदाह—किसी भी प्रकार से मृत्यु हो, मुनियो को अपना शील सयम नही छोडना चाहिए। तभी तो ऐसे समभावी मुनि सदा के लिए मृत्यु के आघात से मुक्त हो जाते हैं।"

इस पर अभयमती ने कहा—

"आपने ठीक कहा। हम दोनो क्षमाभाव मे मग्न हैं। हमारी सयम-भावना की कसौटी का यही तो अवसर है। इसी प्रकार की साधना से अनन्त जन्मो की यात्रा का अन्त हो जाएगा।"

सैनिक दोनो को पकडकर चण्डमारी देवी के मन्दिर के लि...

राजा मारिदत्त के पास ले गये। इस मन्दिर का दृश्य इन्होने देखा तो देखते ही रह गये।

कौलानुयायी लोग तरह-तरह से आनन्द मना रहे थे। कोई सीग का बाजा फूंक रहा था। कोई ढोलक, मृदग और डिडिम-डमरू बजा रहा था। ये कौलधर्मी (अधर्मी ?) मोर पखो के आभूषण पहने थिरक-थिरककर नाच रहे थे। जिनके पास कोई वाद्य नही था, वे तालियाँ ही पीट रहे थे।

रुधिर-चर्बी से युक्त कच्चा मास ये लोग ऐसे स्वाद से खा रहे थे, जैसे शूकर विष्ठा खाता है। योगिनी, शाकिनी, डाकिनी आदि रक्त पी रही थी। जहाँ-तहाँ पशुओ के रुण्ड-मुण्ड पडे थे।

देवी के मन्दिर मे चर्बी के दीप जल रहे थे। उनकी बत्तियाँ किसी पशु की पूँछ के बालो की बनी थी। भित्तियो का लाल रग रक्त से तथा श्वेत भाग हड्डियो के चूर्ण मे पुता था। ऐसे बीभत्सतम वातावरण मे दोनो बालसाधक पहुँचे और जब राजा मारिदत्त ने उन्हे देखा तो स्तब्ध रह गया, कुछ क्षण के लिए अपनी सुध-बुध खो बैठा।

राजा मारिदत्त का अतःकरण स्वय काँप उठा, हृदय धडकने लगा और हाथ का खड्ग आप ही आप नीचे गिर गया। उन्हे देख राजा सोचने लगा—'यह दिव्य युगल तो वध लायक नही हैं। यह कोई मानवपुत्र नही, देवपुत्र प्रतीत होते है।'

फिर राजपुर के नर-नारियो का कोलाहल भी राजा ने सुना तो उसे लगा कि प्रजा विद्रोह पर उतारू है। राजा ने मन-ही-मन निश्चय किया—'ऐसे दिव्य युगल की हत्या करने मे कोई देव कुपित हो गया तो ? इनको देखकर तो मन मे स्नेह और ममता उमड रही है। इनका वध नही होगा। मैं कौलाचार्य

पूछूंगा कि कोई ऐसा रास्ता निकाले जिससे इनका ... पड़े और मात्र पशु-पक्षियों के वलिदान से ही मुझे ... प्राप्त हो जाए ।'

राजा मारिदत्त की हिंसा, वालसाधको की अहिंसा ... भीगी बिल्ली बन गई थी । उसकी सात्विक वृत्तियां ... थी । जैसे एक ही दिन मे सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ... है, अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त का समय सतयुग, उसके बाद ... के बाद का समय त्रेता, फिर क्रमश द्वापर और रात्रि ... युग होता है, उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति मे भी सात्विक, ... और तामस—तीनो भाव होते है । कब कौन-सा भाव जाग्रत ... कहा नही जा सकता ।

पुरानी कहावत है कि खरबूजे को देखकर खरबूजा ... लता है । तीव्र सुगध के पास आकर दुर्गंध भी सुगन्ध बन ... है । क्या नाले का पानी गगाजी मे मिलकर गगाजल नही ... जाता ?

इसी तरह सत्त्वगुण के साकार रूप, समताव्रत ... करुणा उदधि, क्षमा की प्रतिमा, अहिंसा के साक्षात् ... रुचि और अभयमती का सान्निध्य जब राजा मारिदत्त ... तो स्वाभाविक नियम से उसकी सात्त्विक वृत्तियां ... और वह दयानुरंजित होकर सोचने लगा, ... द्रवित होकर पिघलने लगा जैसे सूर्य की किरणो से ... पिघलता है ।

राजा मारिदत्त ने सोचा—'इन बालकों ... होती है । इनके पांवो के तलवे ... और कोमल है । हाथो की उंगलियां कैसी सीधी और ...

इनकी भुजाएँ दयावल्लरी की शाखाओ जैसी हैं। भला, मैं इनका वध कैसे कर सकता हूँ ?

'ये बालक मानव-सतान तो लगते ही नही। यह बालक तो कामदेव, सुरेन्द्र, फणीन्द्र अथवा उपेन्द्र है और यह बालिका मानो धृति, कान्ति और कीर्ति है, अथवा साक्षात शान्ति, शक्ति, मही, ऋद्धि, सिद्धि, सुखो की उपलब्धि, यशो की श्रेणी या कवियो की वाणी है, अथवा यह तपस्विनी बालिका मेरी आराध्या चण्डमारी देवी ही है, जो मेरी महाभक्ति से आकृष्ट होकर मुझे कृतार्थ करने आई है।'

राजा मारिदत्त विभोर होकर अभयरुचि और अभयमती को अपलक निहारने लगा। उसके मन मे नाना प्रकार की कल्पनाएँ उठ रही थी कि अभयरुचि ने उसकी विचारधारा भग करते हुए कहा—

"राजन ! अपने कार्य मे विलम्ब क्यो करते हो ? जिस प्रयोजन के लिए आपके सैनिक हमे पकडकर लाये हैं, अपना वह कार्य सिद्ध करने मे क्यो हिचक रहे हो ?"

राजा के विचार तो बदले हुए थे ही, इन बालको की ये प्रतिकूल बाते सुनकर वह और भी अधीर हो उठा। क्योकि मृत्यु के भय से दूर और मृत्यु का वरण करने को सतत तत्पर ये बालक अद्भुत थे। मरने के लिए इतनी जल्दी तैयार कौन होता है ? रोग से पीडित, अपाहिज कुत्ता, जिसके तन मे कीडे पडे हैं, जिनसे चला भी नही जाता और जो घिसट-घिसटकर चलता है, ऐसा कुत्ता भी मरना नही चाहता और ये बालक मरने को प्रस्तुत हैं।

राजा मारिदत्त ने कहा—"बालको ! तुम्हे देखकर जाने क्यो मैं मोहासक्त हो गया हूँ। पहले अपना परिचय तो दो।"

मुनि अभयरुचि—"हम अजर अमर-आत्मा है, ... सूचक यह मानव-तन धारण किये। इससे अधिक ... परिचय चाहते हो ?"

"मेरे नगर मे तुम कहाँ से आये हो ? तुम्हारे ... कौन हैं ? तुम अपने वश-कुल का परिचय दो।" राजा मारि... ने कहा।

"हमारे वध के लिए यदि हमारा सासारिक परिचय ... जरूरी है तो ?" अभयरुचि ने कहा—"उज्जयिनी ... गुणधर हमारे पिता थे, जो अब राज-पाट त्याग कर....।"

बिजली का एक तेज झटका सा लगा। "अरे-अरे ! ... मेरे भानजे हो ? यह बालिका मेरी भानजी है। राजा गुणधर ... मेरे बहनोई है।" राजा मारिदत्त ने चकित-हर्षित होकर कहा—"तुम मुझे नही जानते, पर मैं जानता हूं। कुसुमावली मेरी ... है। तुम तो अपने ही निकले। भला, मैं तुम्हारा वध ... सकता हूं ?"

मुनि अभयरुचि बोले—"राजन ! यह तो हमारा ... और नाटकीय परिचय रहा। हमारा असली परिचय तो ... लम्बी यात्रा है। सात जन्मो की लम्बी यात्रा के बाद ... अपनी मजिल नही मिली....

"राजन ! नाते-रिश्तो का परिचय तो अच्छा-खासा ... है। इस मजाक को भी सुनो। जो राजा गुणधर मेरे पिता ... ही पहले पुत्र मेरे थे। यह बालिका पहले मेरी माता थी। ... तो, कर्मों ने यह नया सम्बन्ध जोड दिया।

"राजन् ! कई जन्म पहले मैं उज्जयिनी का राजा ... था। अभयमती मेरी माता चन्द्रमती थी। हम माता-पुत्र ...

साथ मरे। मरने के बाद अनेक तिर्यंच योनियो मे भटके। फिर मैं राजा यशोधर अपने ही पुत्र गुणधर के अंश से उसका पुत्र बना। पुत्र-वधू कुसुमावली मेरी जननी बनी। मेरी माता चन्द्रमती अपने पौत्र गुणधर की कन्या बनी। इस तरह मेरी माता चन्द्रमती बहन अभयमती बन गई।

"राजन्! नाते-रिश्तों का अपनत्व कैसा मजाक है, यह मैंने जान लिया। अत आप भी इस चक्कर मे न पडे कि मैं आपकी बहन का पुत्र और यह पुत्री है। आपको जो करना है, कर सकते है .."

मारिदत्त राजा सिहर उठा। उसने अधीर होकर कहा—

"यह सब क्यो कहा तुमने ? मेरे लिए तो बड़े आश्चर्य का विषय है।

"कुमार! मैं तुम्हारा असली परिचय और तुम्हारे जन्मो की कथा जानने के लिए बडा उत्सुक हूँ। तुमने जो यह कहा कि हमारा असली परिचय तो एक लम्बी यात्रा है—सात जन्मो की लम्बी यात्रा के बाद भी तुम्हे अपनी मजिल नही मिली। तो यह क्या रहस्य है ? इसे सुनाइये कुमार! बडी उत्सुकता जाग उठी है मन मे.. ।"

मुनि अभयरुचि बोले—"राजन्! सात जन्मो मे मैंने जो अनुभव किया और यह पाया कि मात्र हिंसा के परिणामो से कितनी-कितनी कठोर यातनाएँ मिली, हमारी यह धर्मकथा सुनने की स्थिति मे तुम अभी नही हो, इसलिए मेरा सुनाना ऊसर मे बीज बोने के समान व्यर्थ जायगा।

"यौधेयनरेश! जो मूर्च्छित हो उसे सुखोदक और

बयार से चैतन्य किया जाता है। इसी तरह जो उत्सुक है उसी को धर्म-श्रवण कराया जाता है। तुम्ही बताओ मुर्दे को सींचने से क्या लाभ है।

"राजन् ! हमारी यात्रा एक धर्म कथा है। वह शान्त मन द्वारा सुनने योग्य है। एक ओर आप कर्कश स्वरों में बोल रहे पशुओं का बलिदान करने बैठे हैं और दूसरी ओर अहिंसा की कथा सुनना चाहते हैं तो यह बेमेल खिचड़ी कैसे पकेगी"

मारिदत्त तुरन्त ही समझ गया कि उसे क्या करना है। उसने तुरन्त ही झांझ-मंजीरों, ढोल-नगाड़ों और डमरू का बजना बन्द करा दिया। सब ओर शान्त करा दी। तब राजा स्थिर और शान्त भाव से बैठा। नगर के अन्य लोग भी जो भीड़ बनाये खड़े थे, शान्ति भाव से धर्मकथा सुनने बैठ गये। अब राजा मारिदत्त ने मुनि अभयरुचि से बार-बार आग्रह किया तो उन्होंने आसन ग्रहण कर अपनी यात्रा-कथा सुनाना शुरू किया। उन्होंने कहना शुरू किया और कहते ही चले गये—

"राजन् ! एक व्यक्ति कुछ वस्तुएँ खरीदने बाजार जाता है। वह कुछ चीजें तो खरीद लाता है और कुछ भूल आता है। फलस्वरूप वह पुनः बाजार जाता है। यही दशा इस जीव की भी है।

"वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी ऐसी चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद जीव को मनुष्य जन्म मिलता है। यह नर-तन उसे इसलिए मिलता है कि कर्मों का नाश करके वह संसार रूपी बाजार में आना बन्द हो जाय और सदा—के लिए अखण्ड आनन्द में निमग्न रहे।

"लेकिन अनेक जन्मों की अनन्त यात्रा के बाद भी मैं

जीव अपना लक्ष्य नही समझ पाता। वह यह नही जानता कि मैं क्यो आया हूं और क्या लेकर जाना है। नर-देह के लिए तो देवता भी तरसते हैं। क्योकि मात्र इसी योनि मे छुटकारा मिल सकता है। यह मानव योनि भोग योनि भी है और कर्मक्षय करने अथवा कर्मवन्ध करने की योनि भी है।

राजन् ! कर्म अच्छे हो या वुरे—दोनों का ही अच्छा-वुरा भोग भोगने के लिए ससार मे आना पडता है। शुभकर्म वाला राजा या श्रेष्ठी वनता है। उसे स्वस्थ शरीर भी मिलता है और अशुभ कर्मों के कारण दरिद्री, भिखारी तथा रोगी, कोढी, अन्धा, वहरा भी वनता है।

"राजन् ! हमारी यात्रा कितनी लम्वी है, इसकी पूरी जानकारी तो है नही। पर जव से हमे इसका ज्ञान है, सो तुम सुनो।

राजन् ! शुभकर्म के प्रभाव से सात जन्म पूर्व मैं राजा यशोधर वना—मालवनरेश यशोधर। मेरी इस जन्म की वहन यह अभयमती राजमाता चन्द्रमती थी। मैंने अपने वाहुवल से अपना यशोधर नाम सार्थक कर दिया था। मेरा यश चारों ओर छाया था। मै सच्चे अर्थों मे यशोधर था।

"मेरे पिता महाराज यशोध ने तो दीक्षा धारण करली थी। उनके वाद मैं ही मालव का राजा वना था। मेरी रानी नयनावली वैराट देश की राजकन्या, अर्थात् राजा विमलवाहन की पुत्री थी। हम दोनो की अनन्य प्रीति का क्या कहना था। जल और लहर, चन्द्र-चन्द्रिका अथवा पुष्प-सुगन्ध हम एक थे।

"राजन् ! मैंने उच्च कुल पाया। वंश-परम्परा में [illegible] धर्म भी मिला। ऐसे सुन्दर सुयोग को पाकर मैं अपना [illegible] जन्म सार्थक कर सकता था; पर कर नहीं पाया। मैंने [illegible] मुर्गे का वध करके जो भावहिंसा की थी, उसके कारण मैं [illegible], बकरा, नेवला आदि योनियों में भटका। मेरी माता [illegible] मुझे इस भावहिंसा के लिए उकसाया था, इसलिए वह भी [illegible] साथ तिर्यंच योनियों में भटकती रही।

"राजन् ! इन जन्मों की कथा बड़ी ही करुण और [illegible] भी आँखें खोल देने वाली है। अब तुम प्रारम्भ से पूरी कथा सुनो।

इसके बाद मुनि अभयरुचि ने मालव देश और उज्जयिनी नगरी का वर्णन विस्तार से मारिदत्त राजा को सुनाया। [illegible]नन्तर राजा यशबंधुर, तथा उनके पुत्र यशोध का परिचय [illegible] यशोधर के रूप में अपना परिचय दिया।

रानी नयनावली के साथ की घोर कामासक्ति और [illegible] अचानक ही कुबड़े के साथ उसका छद्म प्रेम देखकर जो [illegible] [illegible]। उसका वर्णन भी किया। इस तरह मुनि अभयरुचि [illegible] [illegible]शोधर के रूप में अपना परिचय विस्तार से दिया [illegible] गुणधर की कथा भी सुनाई।

मारिदत्त सहित सभी श्रोता विभोर होकर सुन [illegible] उनकी आँखों में आश्चर्य और निर्वेद के आँसू छलक उठे।

९

[१]

राजा मारिदत्त, देवी के पुजारी और एकत्र सैकडो लोग दत्तचित्त होकर मुनि अभयरुचि की आत्मकथा सुन रहे थे।

मुनि अभयरुचि कह रहे थे—

मेरे (यशोधर) पिता राजा यशोध ने मेरा विवाह वैराट नगर के राजा विमलवाहन की पुत्री नयनावली के साथ करा दिया। नयनावली कामिनी नारी थी। वह पुरुषरूपी भौरे को आकर्षित करने वाली रूपवती ही नही, पुरुष को कामासक्त करने के सभी हाव-भाव, अनुभाव और काम-सकेतो मे निपुण थी।

लेकिन दोष तो मेरा ही था। क्योकि मैं पतगे की तरह उसी पर मँडराता रहता था। राज्य सचालन का अधिकाश कार्य मैंने अपने सुयोग्य पुत्र गुणधर को सौप दिया था, ताकि मैं नयनावली के स्नेह-पाश मे अधिक से अधिक रह सकूँ। लेकिन राजा तो मैं ही था, राज-सभा मे मुझे ही बैठना पडता था, पर मेरा मन सदा रानी के पास ही रहता था।

नयनावली रानी भी ऐसी थी कि मेरे विना एक-एक क्षण गिन-गिनकर काटती थी। काम का प्रभाव तो

बडे होने पर भी कामिनी रानी की ओर मे

था। मैं ऐसा मानकर चल रहा था कि

है तो नयनावली के पास मे ही है।

एक रात मेरा भ्रम दूर हो गया। जिसे रानी को [illegible] 'अपनी' समझे बैठा था, वह एक धोखा निकली। [illegible] नयनावली एक कुबड़े दास मे आसक्त थी। सो मुझ [illegible] वह चुपचाप अपने प्रेमी कुबड़े के पास अभिसार [illegible] पीछे मैं भी गया और उसका सब चरित्र देख लिया। [illegible] कारण मेरी इच्छा हुई कि इन दोनो पापियो का [illegible] पर तभी मुझे मुनि के वचन याद आ गये ।

किन्ही मुनि ने एक बार अपनी देशना मे [illegible] कि प्राणी ! तू किसी को दण्ड देने मे समर्थ नही है और [illegible] ही कोई दण्ड दे सकता है। मान, अपमान, तिरस्कार [illegible] प्रतिघात, कष्ट, दुःख और स्वर्ग का-सा वैभव आदि [illegible] पाता है, अपने ही कर्मों का फल पाता है। यदि तू [illegible] मारेगा तो तेरे हाथ से मरने वाला तो अपने अशुभ कर्म [illegible] करेगा और तू दुस्सह, अशुभ कर्म का बन्ध करेगा। [illegible] अपना और पर का—दोनो का ही कल्याण चाहता है तो [illegible] [illegible]और प्रतिशोध, वैर या शत्रुता—ये शब्द अपने जीवन से [illegible] । क्योकि न तो तेरा कोई शत्रु है, न मित्र। शत्रु-मित्र [illegible] ही 'अपनत्व' की भ्रांति है। अपना तो कोई है ही नहीं।

इन मुनि वाणी के याद आते ही मेरा [illegible] गया। मैं सोचने लगा—'अरे यशोधर ! तू [illegible] है ? यह नयनावली तो स्वयं ही अपने [illegible] इसकी हत्या करके तू क्यो पाप का भागी बनता है ? [illegible] नश्वर वैभव मे उलझा है ? त्याग दे इसे । धर्म [illegible] तुझे शांति मिलेगी।'

ऐमा सोच मैंने सयम वरण कर मुनि वनने का निश्चय कर लिया। अपना यह निश्चय मैने दूसरे दिन सवेरे रानी को सुनाया तो वह मायाविनी रोने लगी और तथाकथित प्रेमवश मेरे साथ ही सयम लेने का निश्चय किया। उसने मुझसे कहा—

"नाथ! आप तो निवृत्ति के कारण सयम ले रहे है। आप प्रतिवोधित हो गये है। पर मैं तो प्रवृत्ति के कारण ही आपके साथ सयम लूंगी। क्योकि आपके विना मैं जी नही सकती। आप सयम लेकर ही रहेंगे। अत आपके सान्निध्य की प्रवृत्ति को पुष्ट करने के लिए ही मैं साध्वी वनूंगी।"

उसके शब्दो मे कैसा नाटक था! यदि मै रात को कुवडे के साथ उसे रमण करते न देख लेता तो उसके इन शब्दो पर गद्-गद हो जाता। पर उस समय तो मैं मन-ही-मन वहुत हसा और उसे सयम की अनुमति दे दी। मै जानता था कि सयम तो वह मेरे साथ क्या लेगी, पर ऐन वक्त पर कुछ दूसरी माया रचेगी। लेकिन मैं यह नही जानता था कि वह मेरे प्राण ही ले लेगी! मेरी मौत उसी के हाथ से लिखी होगी।

रानी नयनावली सयम ले या न ले, मुझे इससे कोई मतलव नही था। मुझे तो सयम लेना ही था और इसके लिए माता चन्द्रमती से अनुमति लेनी थी। यह जो मेरी वहन अभयमती है, यही तो राजमाता चन्द्रमती थी। खैर, अब मूल वात पर आता हूं।

मेरी माता चन्द्रमती वलि, हिसा आदि धार्मिक कार्यो मे ही धर्म मानती थी। वह ऐसा विश्वास करती थी कि कुलदेवी कात्यायिनी के सम्मुख जीव वलि दी जाय तो सव तरह से कल्याण होता है। उसने कभी भी निर्ग्रन्थ मुनियो को देखा

सुनी थी। अत. मुझे आशा नही थी कि वह मुझे [illegible] की अनुमति देगी। लेकिन अनुमति तो लेनी ही थी, सो मैंने [illegible] ही-मन एक सपना गढ लिया और सोचा यह कि मेरे [illegible] लिए माता सपना सुनते ही मुझे अनुमति दे देगी।

मैंने माँ को सपना सुनाया तो आशा के विपरीत उसने [illegible] किया मैं देवी के सम्मुख मुर्गे की बलि दे दूं। मुझे [illegible] स्वप्न मे भी स्वीकार नही था। अत मैं माता से भी [illegible] कराना चाहता था। इसके लिए मैंने माता [illegible] के दुखद परिणाम और अहिंसा मे कल्याण की बाते [illegible] बताई।

मैंने उससे कहा कि अम्ब ! हिंसा की प्रेरणा देने वाला [illegible] कार्य मे सहयोग करने वाला और हिंसा करने वाला—[illegible] घोर मायाचारी, शोकाचारी और चाण्डाल हैं। ऐसे [illegible] अधर्मी कुकर्मी मरने के बाद भील, चाण्डाल, गूंगे, [illegible] कोढी और अंधे होते है। यह तो तब की बात है जब [illegible] शुभकर्म के शेष रहने से उन्हें मनुष्य जन्म मिल जाता [illegible] हिंसा करने-कराने वाले तिर्यंच योनि को प्राप्त होते हैं। [illegible] [illegible], नाली के कीडे, सर्प, छछूंदर, गिद्ध, चील, [illegible] [illegible] और न जाने क्या-क्या होते हैं। यदि हिंसा [illegible] लोग अहिंसक मुनियो को छोडकर शिकारियो की [illegible] नही करते ?

इस तरह मैंने माता को बहुत समझाया, पर उसकी समझ कुछ न आया, क्योकि उसके मन मे विपरीत धारणाएँ [illegible] थी। उसने अपने मातृत्व पद का लाभ उठाते हुए आखिर मुझे बाध्य किया कि मैं अवश्यमेव जीवहिंसा करूँ। मैं [illegible]

[ह]ो गया। लेकिन पर की नही, स्व की हिंसा के लिए। मैंने अपनी [ग्र]ीवा पर खड्ग रखा और कहा कि यदि कुलदेवी वलिदान से ही [स]न्तुष्ट होती है तो मैं आत्म-वलिदान करूँगा।

मेरी माता चन्द्रमती इसे कैसे सहन करती कि उसके सामने [म]ैं अपना प्राणान्त करूँ? स्वार्थ की विडम्बना तो देखो कि दूसरे के पुत्र के प्राणो का कोई मूल्य नही और अपने काँटा भी लगे तो [स]िसकारी भरते है।

तो माता ने मुझे मरने नही दिया। वह करुण-चीत्कार करने लगी। राजसेवको ने मेरे हाथ से खड्ग छीन लिया। अन्त मे तय यह हुआ कि माता मेरी वात मानेगी, अर्थात् मुझे जीवहिंसा के लिए वाध्य नही करेगी और मैं भी माता की वह वात अवश्य मानूंगा, जो जीवहिंसा के अतिरिक्त कुछ भी होगी। इस प्रकार मै वचनवद्ध हुआ और माता चन्द्रमती ने मुझ से कहा कि मैं आटे के मुर्गे का वलिदान कर दूं; क्योकि यह प्राणि-हिंसा नही होगी। मैंने आटे के मुर्गे का वध देवी के सामने कर दिया।

किसी जीव की हिंसा तो नही हुई, पर भावना से तो हिंसा हो ही गई। इस भावहिंसा को करने वाला मै यशोधर राजा था और कराने वाली थी, माता चन्द्रमती। मात्र भावना से ही हिंसा करने-कराने के कारण हम दोनो पुत्र और माता ने ऐसे भीषण-दुस्सह कर्मो का वध किया कि उद्धार असभव। मरने के वाद इसी भावहिंसा के करने-कराने के कारण हमे तिर्यंच योनियो मे वार-वार भटकना पडा और असह्य वेदनाएँ भोगी।

अभयरुचि के रूप मे मैं यशोधर का जीव आज सोचता हूँ कि यदि मैंने सचमुच के मुर्गे का वध किया होता तो जाने मेरी क्या दुर्दशा होती?

खैर, अब आगे सुनो। मै तो सयम के लिये कृतसकल्प था ही, इसको रानी नयनावली जानती थी। ज्यादा बढाने से क्या लाभ ? दुःशीला नयनावली ने युक्ति से मुझे विष दे दिया। फिर उसे यह भी शका हुई कि वैद्य लोग मुझे बचा लेंगे, सो 'हा नाद' कहकर मेरे वक्ष पर पछाड खाकर गिरी। मेरे ऊपर अपने केश ऐसे फैलाये कि मेरा मुख और ग्रीवा ढक गये। इसी युक्ति का लाभ उठाकर उस मायाविनी ने मेरा गला दवा दिया। मेरा प्राणान्त हो गया। शोक की अति से मेरे साथ ही मेरी माता भी मर गई।

हम दोनो की सद्‌गति के लिए मेरे पुत्र गुणधर राजा ने अनेक तरह के दान दिये, ब्रह्म-भोज कराया और यह सतोष किया कि पिता और पिता की माता की सद्‌गति हुई होगी; पर हम दोनो की जो दुर्गति हुई, उसे तो हम ही जानते थे। वह वेचारा अज्ञानी क्या जानता। और तो और हे राजा मारिदत्त ! मेरे पुत्र गुणधर ने मेरे नाम से वैलो के विवाह तक कराये।

अब मैं तुम्हे यह बताता हूँ कि यशोधर का शरीर छोडने के बाद मैने किस-किस का जन्म पाया और क्या-क्या कष्ट उठाये। ...धर-देह के वाद तो कितने ही जन्मो के वाद मुझे अब अभय... के रूप में मनुष्य का जन्म मिला है। यही दशा मेरी माता की भी रही। कर्मयात्रा की एक विचित्रता यह भी तो देखो कि पहले हम पुत्र और माता थे और अब भाई-वहन वन गये। गुणधर जो मेरा पुत्र था, मैं उसी का पुत्र वन गया और अभय-मती मेरे पुत्र अर्थात् अपने पौत्र की पुत्री वनी।

राजन् ! अव तुम जन्म-जन्मान्तर का मेरा वह अनुभव सुनो जो भावहिंसा के कटु परिणामस्वरूप प्राप्त किया।

[२]

हिमालय पर्वत जैसा सुन्दर है, वैसा ही दुरारोह भी। इस पर्वत के दक्षिण भाग मे लताओ, झाडियो, टेकरियो तथा अनेक प्रकार के वृक्षो से पूरित एक सघन वन था।

इस वन मे सर्प बहुत रहते थे। हाथियो के झुण्ड भी विचरण करते थे, जो यूथ बनाकर सरोवर मे जल पीने जाते थे। पर्वत के इस आचलिक वन मे बडी-बडी प्राकृतिक गुफाएँ थी। फल-फूल और कन्द-मूल की वहाँ कोई कमी नही थी।

इस वन मे पशु-पक्षी ही यहाँ की प्रजा थी और वही राजा भी थे। अपनी-अपनी शक्ति-सीमा मे सब स्वतन्त्र रहते थे। फिर भी शक्तिशाली बिना अभिषेक के राजा बन जाता है, सो सिंह-शार्दूल ही सबका राजा बन बैठा था। उसके आतक के कारण उसके भोज्य मृग, शशा झाडियो मे छिपकर रहते थे। पर पक्षियो और शाखामृगो, अर्थात् बन्दर-लगूरो को सिंह, बाघ आदि से कोई भय नही था। पर तरुवासी पक्षियो के ऊपर भी कोई था, और वह था बाज।

जब कभी बाज दिखाई देता तो पखेरू ऐसे चीखते-चिचियाते कि वन को ऊपर उठा देते। इस तरह ये सबको सावधान कर देते। पर मरने वाले को तो मरना ही होता है सो बाज किसी एक पखधारी को दबोचकर उड जाता।

कभी-कभी वनविलाव भी पेड़ पर चढ जाता और पक्षियो के सुख-चैन को छीन लेता। ये पखेरू आपस मे भी तो कम नही थे। रात को उल्लुओ का दल कौओ पर आक्रमण करता और दिन मे कौए उल्लुओ पर धावा बोलते। एक को दिन मे नही दीखता और दूसरा रात को अंधा हो जाता है।

रात में देखने के कारण बेचारा उल्लू बड़ा बदनाम है। इसे प्रियतम का उल्टा तमप्रिय, अर्थात् अंधकार को प्यार करने वाला कहकर लोग उसकी निन्दा करते है, पर उसकी विचित्र सामर्थ्य तो देखो कि वह बिना किसी सहारे के—अपनी ही आंखो से देखता है। इसके विपरीत समस्त जीव सूर्य, चन्द्र और दीपक—किसी-न-किसी सहारे से ही देख पाते हैं। उल्लू की निन्दा संभवतः इसीलिए होती है कि वह अपनी सामर्थ्य का दुरुपयोग ही करता है।

तो इस हिमालय तटीय वन मे असंख्यो प्रकार के पशु और अनेकों ही प्रकार के पक्षी थे। भालू, मृग, साँभर, सेनमृग थे। सर्परिपु नेवला और मयूर भी थे, जो सर्पो की सख्या कम करते रहते थे। वनकुक्कुट कूका देते हुए घूमते थे। शाखाओं पर रहने वाले वन्दर (शाखामृग) अपनी किलकार से वन की अशान्ति को और अधिक तीव्र बना देते थे। लेकिन जब सिंह और शूकर आपस मे लड़ते थे तो वहाँ की शांति काँपने लगती थी।

इसी वन मे यहाँ के हिंसक जीवो से डरते-डरते मनुष्य भी घूमते थे। ये लोग यहाँ के फल-फूल, कन्द-मूल आदि बीनकर अपनी जीविका चलाते थे। औषधियो और जडी-बूटियो का ज्ञान रखने वाले भी वन मे आते थे। इसके अलावा वन-जीवो के प्राण लेने वाले लोग भी यहाँ आते थे।

प्राणहन्ता लोग थे भील, शवर, पारधी आदि वर्गों मे बँटे आखेटक।

शुक, मैना, मयूर आदि पक्षी शौकीनो का मनोरंजन करने और उन्हे बेचने के लिए पकड़े जाते थे और कुछ पशु-पक्षी उनका मास खाने के लिए पकड़े जाते थे।

तो हे राजा मारिदत्त ! हिमालय के उसी आचंलिक वन मे मैं राजा यशोधर की देह छोडकर मोरनी के पेट से जन्मा और मयूर वना। सवमे अधिक कष्ट तो मैंने मोरनी माँ के उदर मे ही भोगे थे।

मयूरी की गर्भाग्नि मे मैं इस तरह जलता था, जैसे दुर्जनों के वचनो से सज्जन सतापित होते हैं। जैसे नारकी जीव को खौलते तेल के कडाह मे डालकर दुष्कर्म का दण्ड दिया जाता है, ऐसा ही कष्ट मै मयूरी के गर्भ मे पाता था। भावहिंसा के परिणामस्वरूप मैंने तिर्यंचयोनि पाई और पाया गर्भवास का महाकष्ट। जो लोग सचमुच की हिंसा करते है, उनका जाने क्या होता होगा ?

अण्डे मे वन्द मैं के गर्भ से वाहर तो आ गया, पर अभी ससार मे नही आया था। मेरे ऊपर पख फैलाकर मयूरी माँ मेरी रक्षा-सुरक्षा करती थी। कालान्तर मे मैं अण्डे से भी वाहर आया।

मेरी माँ कीडे-मकोड़े लाकर मुझे खिलाती थी। यशोधर के रूप मे तो मैंने वह आटा भी खाना स्वीकार नही किया था, जिसका कि मुर्गा वना था। क्योकि ज्यो ही मैं उसे खाता था, मुझे मास की कल्पना होने लगती थी, पर अव तो मै कीडे-मकोडे खाकर वढ रहा था।

एक दिन एक शिकारी आया। उसने मेरी माँ को तीर से वेध दिया और एक वस्त्र मे लपेट लिया। यद्यपि मेरे पख निकल आये थे, फिर भी मै ज्यादा ऊँचा नही उड सकता था। अतः शिकारी ने मुझे भी पकड लिया। मेरी माता और मैं दोनो ही शिकारी के कब्जे मे थे। अन्तर इतना था कि मेरी माता मर चुकी थी और मैं जीवित था।

मुझे और मेरी माता के शव को लेकर शिकारी अपने
गया। मेरी माता का शव तो उसने उज्जयिनी के आरक्षी-
नगर-रक्षक (कोतवाल) को दे दिया और मुझे न मारने
विचार कर एक पीजडे मे बन्द कर दिया, ताकि बिल्ली से मे
रक्षा हो सके।

शिकारी की पत्नी ने झल्लाकर शिकारी से कहा—

"मयूरी तो तुमने आरक्षी को दे दी। इस मयूर शावक
किसका पेट भरेगा? अब जो भी है, इसे जल्दी मारो, ता
मेरी भूख मिटे।"

"नही-नही। इसे नही मारूँगा।" शिकारी बोला—"
तो जीवित ही अधिक उपयोगी है। इसे मुँहमांगे दामो
बेचूंगा।"

अब तो शिकारी की गृहिणी उबल पडी। बोली वह—

"तो मै क्या तुम्हारा माँस खाऊंगी? क्या खाऊँगी
क्या खायेंगे बच्चे और तुम भी क्या खाओगे?"

"खाना सभी का मिलेगा।" शिकारी बोला—"ठहर
अभी इसे बेचकर आता हूँ। आजकल शौकीनो को मोर मि
कहाँ है। यह तो बच्चा था, सो पकड मे आ गया।"

यह कह उक्त शिकारी ने मुझे आरक्षी को ही बेच दिया
उस आरक्षी ने बडे यत्न से मुझे पाला। मै बड़ा होने लगा औ
बडा भी हो गया। मेरा रग-रूप सभी को मोह लेता था। मे
नीला कठ कुछ कुछ हरापन लिये हुए नीली ही गर्दन थी मेरी
मेरा नाम सुग्रीव और सुकठी पड गया। मेरे पख तो ऐसे सु
और चन्द्र-चन्द्रिका जैसे थे कि मन को मोह लेते थे।

मेरे रूप, रग और सौन्दर्य के कारण मेरे अन्य नाम भी प
गये। मेरे सिर पर किरीट अथवा मुकुट था, इसलिए किरी

और मुकुटधर भी मेरे नाम पड गये। शिखी भी मुझे कहते थे। नीलकण्ठ, केकी, जलदप्रिय, अहिभक्षी और सुभाषी भी मेरे नाम थे।

यो तो स्वभावतः ही मैं नृत्य करता था, पर मेरे पालक आरक्षी ने भी मुझे तरह-तरह से नृत्य करना सिखा दिया। उसने मेरे पैरो मे छोटे-छोटे घुँघरू भी बाँध दिये थे।

मुझे पूरी तरह से नृत्य-कुशल बनाने के बाद आरक्षी ने मेरे पुत्र उज्जयिनीनरेश गुणधर को ही मुझे बेच दिया। गुणधर ने मुझे अपने निजी चिडियाघर मे रख दिया। भवन उपवन मे मैं अब स्वतन्त्र विचरण करता था। मुझे धान्य, सूखे मेवा आदि का भोजन मिलता था। मैं अपने पुत्र और पुत्रवधु—गुणधर तथा कुसुमावली के मनोरजन का एक मनोहारी साधन था। इस रहस्य को मै ही तो जानता था कि पूर्वजन्म मे मैं यशोधर राजा और गुणधर राजा का पिता था। पर बेचारा गुणधर क्या जानता था कि मयूर के शरीर मे मेरे पिता यशोधर का ही जीव है। सच ही यह ससार कैसा विचित्र कर्म-योग का क्षेत्र है।

राजा गुणधर को कुत्ते पालने का भी बहुत शौक था। शिकार का उसमे दुर्व्यसन था, सो शिकार के लिए उसने सैकडो कुत्ते पाल लिये थे। इन्ही दिनो उसने एक नया कुत्ता भी खरीदा।

यह नया कुत्ता मेरी माता चन्द्रमती था। हिंसा की प्रेरणा देने के कारण उसने भी तिर्यंच योनि मे जन्म लिया। नारी लिंग का उच्छेद करके उसने कुत्ते का जन्म पाया। इस तरह पूर्वभव के पुत्र और माता—यशोधर-चन्द्रमती हम पुनः अलग-अलग जन्म लेकर भी मयूर और कुत्ता के रूप मे एक जगह मिल गये।

वह अपने पौत्र, मैं अपने पुत्र—दोनो ही गुणधर राना के द
पल रहे थे ।

मैने अपने रूप-रंग का वर्णन तो किया, अब उस कुत्ते
भी वर्णन करूँ, जिसमे मेरी माता चन्द्रमती का जीव था।

हे राजा मारिदत्त ! वह कूकर चचल, कुटिल एव वक्र
था । उसकी आँखे सिंह के समान विकराल थी । उसकी ग्री
लम्बे बालों मे ढकी थी । उसकी कटि क्षीण थी । भागने मे
बहुत तेज था । उसके दाँतो की पकड बडी मजबूत थी।

कुत्ता राजभवन मे घूमता था, पर उसे अपना पूर्वजन्म
नही था । इस रहस्य को मै ही जानता था कि यह कुत्ता प
इसी राजभवन की राजमाता चन्द्रमती था ।

राजा गुणधर हम दोनो को ही प्यार करता था। वह
ऊपर भी प्यार से हाथ फिरता था और उस कुत्ते को भी
लाता था । कुत्ते को देखकर राजा गुणधर सोचा करता
मेरा यह श्वान तो दुर्गा के सिंह से भी टक्कर ले सकता है।
मेरे आखेट मे बडा सहायक होगा । दौडकर यह हिरन को
पकडेगा, जैसे बाज कबूतर को पकड़ता है ।

इस प्रकार अपना चहेता कुत्ता राजा गुणधर ने एक
कसाई को सौप दिया और उससे कहा कि मास खिला
इसे और पुष्ट करो तथा आखेट-चतुर बनाओ । उसके क
सोने की जजीर थी ।

जजीर सोने की हो या लोहे की, एक बधन तो है ही।
बंधन मे रहता था और मै स्वतन्त्र था । मैं भवन के प
भवन द्वारो और भवन-वाटिका आदि चाहे जहाँ जाने-बैठ
लिए स्वतन्त्र था। एक तरह से मै राजा गुणधर, राजपरि
और राजमहालय का आभूषण ही था।

१०

राजन् मारिदत्त ! मै यशोधर जो पहले नरराज था और प्रजाजन मुझे नरो मे श्रेष्ठ कहते थे, अब मयूर भव मे ही प्रसन्न था। जिसको जो देह मिल जाती है, वह उसी मे प्रसन्न रहता है। इस पर मुझे एक दृष्टान्त याद आ गया। दृष्टान्त झूठा हो या सच्चा, पर उसके भीतर सांसारिकता का एक आश्वत सत्य छिपा होता है।

एक बार एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा कि बेटा, अगले भव मे मुझे शूकर का जन्म मिलेगा। क्योंकि मैंने ब्राह्मण के धर्म-शील को त्यागकर अनुचित कर्म किये हैं। करते समय तो मैं भूला था। अब मरते समय सब याद आ रहा है। सो हे पुत्र ! शूकर रूप मे मेरे जन्मते ही तू मुझे मार देना तो मेरी वह जघन्य देह छूट जायेगी।

इस पर ब्राह्मण-पुत्र ने अपने पिता से पूछा कि मैं तुम्हे पहचानूंगा कैसे ? ब्राह्मण ने बताया कि हे पुत्र ! मैं अमुक चाण्डाल के यहाँ अमुक शूकरी के उदर से जन्म लूंगा। मेरा रंग काला होगा और मेरे माथे पर सफेद तिलक होगा।

अपनी पहचान बताकर ब्राह्मण मर गया। करीब सालभर बाद उक्त शूकरी ने बारह शूकर-शावको जन्म दिया। उनमे एक शावक तिलकधारी भी था। उसको पहचानकर ब्राह्मण-पुत्र भाला लेकर उसे मारने दौड़ा। मरना कौन चाहता है ? कोई

भी नही । सो वह शूकर-शावक प्राण-भय से शक्तिभर भाग-भागता रहा । जब थककर गिर पडा तो मानव-वाणी में अ पूर्वजन्म के पुत्र से कहा—

"मुझे मत मार । पुत्र ! छोड़ दे मुझे ।"

ब्राह्मणकुमार ने कहा—

"यह क्या कहते हो ? पूर्वभव मे मरते समय तुम्ही ने कहा था कि जब मै शूकर बनूं तो मुझे मार देना, ताकि मे यह देह छूट जाए, मुक्ति हो जाए । क्या तुम इस पामर देह मे रहना चाहते हो ?"

"चाहता हूँ पुत्र !" शूकर-शावक ने कहा—"अब मैं इ योनि में मस्त हूँ । मुझे कीचड मे लोटने और विष्ठा खाने आनन्द आता है । तब मैं यह नही जानता था कि जन्म धा के बाद देह छोड़ना कितना दुष्कर होता है ।"

राजन् मारिदत्त ! कहने का अभिप्राय यह है कि यद मुझे अपना पूर्वभव याद था, फिर भी मैं अहिभक्षी मोर के मे ही मस्त था और जीना चाहता था । इसके विपरीत अ कांश लोगो को तो अपना पूर्वभव याद ही नही रहता । वे जानते कि उनकी भव-यात्रा कितनी पुरानी है सो वे अज्ञानी अ वर्तमान जन्म, अर्थात् यात्रा पडाव को ही सार्थक सत्य मानकर भूले रहते हैं ।

राजन् ! यद्यपि मैं तिर्यंच योनि मे मस्त था, फिर भी अ उद्धार करना अवश्य चाहता था, पर कैसे करता उद्धार ? उ करने के लिए तो मनुष्य जन्म ही होता है । शेष योनियाँ भोग योनियाँ ही समझो । अत मैं विवश था ।

राजन् ! देखो तो सही, यह मोहग्रस्त कामादि संसक्त सारी पुरुष सुख के लोभ मे—महावन मे शृगाल की योनि ो पसन्द करता है, यानी सुखकर मानता है, पर मोक्ष को निरान्द, निर्विषय और नीरस समझकर कभी इच्छा नही करता। क ऋषि ने भी यही बात यो कही है—

> अपि दुर्गे महारण्ये शृगालत्वं स इच्छति।
> न तु निर्विषयं मोक्षं कामयेच्च कदाचन्॥

मैं भी कहाँ से कहाँ पहुँच गया। आगे की व्यथा-कथा सुनो।

एक बार मैं राजमहालय के कँगूरे पर पहुँच गया। तभी आकाश मे श्याम घटाये घिर आइ। बादल गरज रहे थे। उनका र्जन-तर्जन कैसा था। मानो ग्रीष्म रूपी प्रचण्ड बलवान शत्रु राजा पर पावस रूपी राजा ने आक्रमण किया हो और रुष्ट होकर गरज रहा हो। मेरा अपर नाम मेघप्रिय भी है। मोर को पावसघन बहुत प्रिय होते है। सो मै कारे-कजरारे पावस मेघों को देखकर मस्त हो गया। पिउ-पिउ की तीखी मीठी बोली बोलता हुआ मै नाचने लगा और नाचते-नाचते रोने लगा। मेरी आँखो से जो आँसू टपक रहे थे, वे ऐसे थे, मानो मेरे पूर्व जन्म के अशुभ स्मरण आँसू के मिस गिर रहे है।

उसके बाद मै कुछ नीचे अट्टालिका पर उतर आया। वहाँ से मैने उस उस कुबडे दास को देखा जो नयनावली रानीरूपी मेरी जूठन का भोजन करता था। यह मेरे दुर्भाग्य का ही उदय था कि उस कुबडे को देखते मैं क्रुद्ध हो गया। मैं उसके ऊपर झपटा। मेरी पूर्वभव की रानी भी तो उसके साथ बैठी प्रेम कीडा कर रही थी। इस बार मैने दोनो से ही बदला लेने का निश्चय कर लिया।

मैंने अपनी पैनी चोच, तीक्ष्ण पंजो और नखो से उन दोनो को बेहाल कर दिया। दोनो को धराशायी किया मैंने। उनके शरीर पर मैंने खूब प्रहार किये। लेकिन वे दो थे और मुझ से अधिक शक्तिशाली थे सो रानी ने मुझे पकडकर और अपनी मणिमय करधनी से जकडकर मेरे पैर मरोड दिये।

जब मैं राजा यशोधर था और समर्थ था तब मैंने अपने रकीब (प्रतिद्वन्द्वी) कुबडे को नही मारा था। तब तो मैं उसके खण्ड-खण्ड कर देता। पर अब पक्षी और असमर्थ होकर भी उसको घायल किया—बदला लिया।

फिर तो वहाँ भगदड मच गई। अनेक राजसेवक और राज-परिवारी जुड आये। सब मिलकर मुझे पीटने लगे। एक बालिका ने मुझे अपनी खड़ाऊँ से पीटा। इस तरह किसी ने चमर दण्ड से, किसी ने कपूर करण्डक कलछुरी से और किसी ने पुष्पाजलि से मुझे मारा। एक ने वीणा दण्ड से मुझ पर आघात किया। मैं कितना विवश और बेचारा था, खूब यातना, खूब ही वेदना सही।

रानी नयनावली ने मुझसे कटु वचन भी कहे। उसने कहा-यह मोर कितना कृतघ्न है। इसको अच्छा दाना-दुनका खिलाते। फिर भी राजमाता पर प्रहार कर बैठा। खैर, मैं जैसे-तैसे स स्थान से हट गया।

कर्म की विडम्बना तो देखो कि कुत्ते के रूप मे मेरी माँ चन्द्रमती जो थी, सो चन्द्रमती के जीव वाले कुत्ते ने झपटकर मेरा गला पकड लिया। बस, अब क्या कहूं राजन्! मेरा प्राणान्त श्वानरूप मेरी माँ द्वारा हो गया।

मेरे पूर्वभव के पुत्र राजा गुणधर को वह आखेटक कुत्ता बहुत प्यारा था। उसने मुझे मारा, इसका भी उसे दु:ख हुआ

क्योंकि मैं भी उसे प्रिय था। उस राजा गुणधर ने अपने कुत्ते का गला पकड़कर मुझे छुड़ाने का बहुतेरा यत्न किया, पर पापिष्ठ श्वान ने मुझे न छोड़ा।

राजा गुणधर कुत्ते पर रुष्ट हो गया और उसने तक-तान कर कुत्ते पर भाले से प्रहार किया। कुत्ते के सिर के दो टुकड़े हो गये। इस तरह मेरे साथ वह कुत्ता भी मरा, यानी मेरी माँ भी मर गई।

कुत्ता के मरने पर ध्यान न दे, मेरे पूर्वभव का मेरा पुत्र गुणधर मेरे लिए विलाप करने लगा। रो-रोकर उसने कहा—

"हा! मेरे महल की शोभा पक्षिराज मयूर मर गया। हे मयूर! जब तू महालय के कँगूरे पर चढ जाता था, तब तेरे सामने ध्वजा की शोभा भी फीकी पड जाती थी। तेरे मरने पर मेरी यह रगावली और कुसुमावली शोभाहीन हो गई।

"हे मयूर! तेरे मरने पर मुझे ऐसा लगता है, मानो मेरे पिता यशोधर की मृत्यु तब न होकर अब ही हुई हो।

"अरे दैव! मोर तो मरा सो मरा, मुझ निर्बुद्धि ने प्यारे कुत्ते को अपने ही हाथो से मार दिया। अब तो शूकरगण स्वच्छन्द होकर क्षिप्रा का जल पीयेंगे। अब तो वन के मृग-शशा सब स्वच्छन्द होकर विचरण करेंगे।

"मेरे दोनो प्रिय मारे गये। जैसे मेरे हृदय से दो टुकडे निकल गये हों।"

इस तरह राजा गुणधर बहुत देर तक शोक करता रहा। उसे उसकी माता, यानी मेरी व्यभिचारिणी रानी [illegible] ने समझाया—

"अरे पुत्र ! तू इन पशु-पक्षियो के लिए रोता है ? ये क्या तेरे पिता से भी ज्यादा थे। मोह को त्याग दे बेटे ! कुत्तो और मयूरो की कमी ही क्या है ? और आ जायेंगे।"

बात भी ठीक थी। मेरे पुत्र गुणधर का शोक फिर जाता रहा। आखिर कब तक शोक करता ?

राजन् मारिदत्त ! इसके बाद भी हमे मनुष्य-जन्म मिल जाता तो भी गनीमत थी। पर मिलता कैसे ? आटे के मुर्गे को मारकर मैंने जो हिंसाजन्य पापकर्मो का बन्ध किया था और मेरी माँ ने प्रेरणा दी थी, उसका फल तो हमे कई जन्मो तक भोगना था, सो भोगा हमने। अब आगे मै क्या बना और मेरी माता क्या बनी, सो सुनो।

[२]

मोर की देह से छूटने के बाद मुझ यशोधर राजा ने फिर नेवले का जन्म लिया और मेरी माता चन्द्रमती के जीव ने कुत्ते का शरीर त्याग सर्प का जन्म लिया। इस जन्म मे भी हम दोनो साथ-साथ एक ही वन मे रहे और एक-दूसरे की मृत्यु का कारण बने। कहावत है न कि 'किया दूर नही जात', सो कुत्ते ने पूर्व-जन्म मे जैसा मेरे साथ किया वैसा फल इस दूसरे जन्म मे पाया। [...]र के रूप मे कुत्ते ने मेरा शिकार किया, मुझे मारा और [...]ल के रूप मे मैंने सर्परूप चन्द्रमती को खाया और उसे मारा। कर्म का बधन बड़ा ही विचित्र व कठोर है।

तो हुआ यो कि सुवेलगिरि की तलहटी मे एक सघन वन था। यहाँ भी अनेको प्रकार के जीव-जन्तु रहते थे। सर्प, छछूंदर, छिपकलियाँ, गिरगिट, नेवले आदि रेंगने वाले सैकडो किस्म के जीव थे। ये सभी एक दूसरे के शत्रु और भक्ष्य-भक्षक थे।

नेवला सर्प की खोज मे रहता था और सर्प मूषको को ढूंढा करता था। यही तो **'जीवो जीवस्य भोजनम्'** की उक्ति चरितार्थ होती थी। पर मूर्ख मनुष्य माँस खाकर इस उक्ति को अपने ऊपर घटा लेता है। यह तो मनुष्य-जीवन और मनुष्य के विवेक का दिवा लियापन हुआ।

तो उसी सुवेलगिरि के वन मे मेरा जन्म एक कानी नेवली के गर्भ से हुआ। मैं इधर नेवला बना और उधर मेरा मूर्ख पुत्र गुणधर पिता समान मान मुझ मयूर के लिए पिण्डदान तथा तर्पण करता था। हाय रे अन्धविश्वास !

एक दिन मुझे बड़ी तेज भूख लगी थी। इधर-उधर घूमते हुए मुझे एक सर्प मिल गया। उसे मारकर मै चट कर गया। मेरी तृप्ति हुई और सप का स्वाद भी जान गया सो वन मे ढूंढ-ढूंढकर सर्पो को खाने लगा। अव मुझे भूख की कोई चिन्ता नही थी। वन मे सर्पो की क्या कमी थी ? मै सर्पों को खाता था और सर्प मूपको को। एक का शत्रु एक होता है। मेरे ऊपर भी कोई था। पर तव मै यह जानता न था। मै विज्जू का भक्ष्य था।

इसी वन मे मेरी माता चन्द्रमती ने सर्प का जन्म लिया था। वह मानवी चन्द्रमती से कुत्ता वनी और कुत्ते से सर्प। इसी तरह मैं मानवेन्द्र यशोधर से मोर वना था और मोर से नेवला। कर्मो की यह कैसी विचित्रता है, जो भवयात्रा का अन्त होने ही नही देते।

एक वार मेरी माता के जीव वाला सर्प मूपको को खाकर अपने विल मे प्रवेश कर रहा था कि पीछे से मैंने उसे पकड़ लिया और उसे खाने लगा। वह भी पलट कर वाहर निकला

अपने विकराल फन से मुझ पर प्रहार करने लगा। मैं उसे चला जाता था और वह मुझ पर फन का प्रहार करता जाता था।

इसी बीच एक बिज्जू आया और वह पीछे से मेरा मांस खाने लगा। उस बिज्जू ने मेरी नसो को तोड दिया। मेरी खाल उधेड़ डाली और मेरी हड्डियों को चबाने लगा। उस समय मुझे जो पीड़ा हुई, क्या मैं उसका वर्णन कर सकता हूँ ? कभी नही। मै तो उस पीड़ा—महाकष्ट के स्मरण से ही सिहर उठता हूँ।

इस प्रकार मैंने अपनी माता के जीव वाले सर्प को खा डाला—मार दिया और बिज्जू मुझे खा गया। हम दोनो ने अपना यह तीसरा भव भी पूरा किया।

राजन् ! इस जगत् मे कोई ऐसा नही ; जो कर्मों को बिना भोगे उनसे छूट सके। चारों ओर कर्मों की लीला का जाल फैला है।

राजन् मारिदत्त ! नाम मात्र की मेरी हिंसा—मात्र भाव हिंसा का परिणाम देख लिया। तुमने जो हजारो-लाखों पशु-पक्षी वध के लिए इकट्ठे किये है इन्हे मारकर तुम क्या पाओगे इसकी कल्पना करो तो।

राजन् ! मेरी भावयात्रा न तो भावुकता है और न मनगढ़न्त कल्पना। यह तो अनुभव कथा है। जैसा मैने किया और जो पाया, वही मैंने तुम्हे सुनाया। अभी तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगडा। अब भी तुम यदि अपने मिथ्या अहंकार का त्याग कर दो और हिंसा ही नही, हिंसा की भावना भी त्याग दो तो यशोदन्त राजा के समान परमपद को प्राप्त करोगे।

राजन् मारिदत्त ! अभी तो तुमने कुछ नही सुना । आगे के
वो मे मैने क्या-क्या कष्ट पाये, उन्हे भी सुनो ।

इस पर राजा मारिदत्त ने वालमुनि अभयरुचि से कहा—

"मुने ! आपकी भवयात्रा के वर्णन सुनकर मेरे रोगटे खडे
ो गये है । मैं वहुत भयभीत हूँ । अव तो मै हिंसा की कल्पना
े भी सिहर जाता हूँ । यह भवयात्रा सच ही आँखे खोल देने
ाली है । आगे क्या-क्या हुआ, सो सव सुनाइए । सव कुछ
ुनने के बाद ही मै आपके साथ मुनि सुदत्त और मुनि गुणधर
के दर्शन करने जाऊँगा और अपने जघन्य अपराध के लिए क्षमा
माँगूंगा ।

"योधेय देश की भूमि कितनी धन्य है, जहाँ आप जैसे
निर्मल संतो के चरण पडे । मैं भी कितना भाग्यशाली हूँ कि
ऐन वक्त पर आकर आपने मुझे वचा लिया । डूवती पतवार को
किनारे लगा दिया ।........"

इसके बाद वालमुनि अभयरुचि पुन अपनी भवयात्रा राजा
मारिदत्त को सुनाने लगे । राजा मारिदत्त के साथ ही अनेक
प्रजाजन, मंत्री आदि भी दत्तचित्त होकर सुन रहे थे ।



११

[४]

उज्जयिनी के निकट जीवनदायिनी क्षिप्रा नदी बहती है। पवन के वेग से उसमे उठती लहरे ऐसी लगती है, मानो कोई सुन्दरी लहलहाती साड़ी पहने हो। उसके जल मे भीतर तक पैठकर मदोन्मत्त हाथी जल-क्रीडा करते है। उसके घाट-सोपान स्फटिक पत्थर के बने है, जो बडे ही सुन्दर लगते है। उज्जयिनी की बसावट से बाहर के भाग मे इसके दोनो ओर सघन वन है। तटो पर सारस, चक्रवाक, स्वर्ण चातक, भास, कारण्ड और हंस युगलों से यह सदा शोभित रहती है।

उस सरिता के तट, गड्ढो की कीचड मे युक्त क्रीडा करते शूकरो से भी सकुलित है।

राजन् मारिदत्त! विज्जू द्वारा खाये जाने के बाद नेवले का शरीर त्यागकर मै इसी क्षिप्रा नदी मे मच्छ बना। मछली के ... र जन्म लेने के बाद कालान्तर मे मै इतना बडा हो गया कि ... ने मे छोटी मछलियो को खाकर पेट भरने लगा। मैं जल की सतह से काफी ऊँचा उछलता था। सरिता में पडी भँवर को ... ही लाँघ जाता था। मैं रोहित जाति का मच्छ था। मेरा रंग लाल था।

इसी क्षिप्रा मे मेरी माता चन्द्रमती के जीव ने एक सुंसुमारी (मकरी) के उदर से जन्म लिया और वह सुंसुमार अथवा मगर

बनी। न तो उक्त मकर ही यह जानता था कि उसके पूर्व-भव का पुत्र यशोधर मैं मच्छरूप मे यहाँ हूँ और न मै ही अपनी माता के जीव वाले मकर के विषय मे कुछ जानता था। यह सब पूर्वकर्मों का ही सयोग था कि हम हर जन्म मे किसी-न-किसी तरह संग-साथ हो जाते थे।

एक बार मेरे पुत्र गुणधर की माता मेरी पटरानी नयनावली और मेरी अन्य रानियाँ क्षिप्रा मे स्नान करने आई। उनकी दासियाँ भी साथ थी। उसी समय ऐसा हुआ कि मेरी माता चन्द्रमती के जीव वाला मकर मुझे खाने दौडा और मुझे अपने जबडे मे दाब लिया। जब रानियाँ, दासियाँ जल मे पैठी तो नयनावली की एक दासी का पैर मकर के मुँह पर गिरा। मकर ने मुझे तो छोड दिया और दासी का पैर अपने मुँह मे दबा लिया। यह दासी कुबडी थी। मै तो भागकर और गहरे जल मे चला गया पर वह कुबडी दासी 'बचाओ-बचाओ' चिल्लाने लगी।

बचाने वाले दौड पड़े और दासी को पकडकर खीचने लगे। मकर उसे भीतर जल मे खीच रहा था। बेचारी दासी की दशा अधर मे लटके त्रिशकु की-सी थी। अन्त मे जीत मकर की ही हुई और वह दासी को निगल गया।

इधर कुछ लोग भागते-हाँफते राजा गुणधर के पास पहुँचे और इस प्रकार बोले—

"पृथ्वीनाथ! आपकी प्रिय दासी कुब्जा ने जब क्षिप्रा के जल मे डुबकी लगाई तो उसे एक ग्राह ने पकड़ लिया। हम उसे बचा नही सके। ग्राह उसे निगल गया।"

इतना सुनते ही मेरा पुत्र राजा गुणधर उठ खड़ा हुआ और बोला—

"इस दुष्ट मकर को अब मै देखूंगा। इसने और भी ... ली है। इसके रहते कोई भी निर्भय होकर नदी मे स्नान नहीं कर पाता। अब सब करेंगे।"

राजा गुणधर अश्वारूढ होकर क्षिप्रा नदी की ओर चल दिया। भल्ल, कृपाण आदि लिये योद्धा भी उसके साथ हो लिये। कुशल मछुए भी वह साथ लेकर चला।

राजा गुणधर के आदेश से अनेक मछुए नदी मे पैठ गये। कुछ ने जाल डाले तथा कुछ ने काँटे डाले। ये मछुए बडे कुशल गोता-खोर और जलयुद्ध मे प्रवीण थे। ये सब ऐसे थे कि नदी मे पड़ी सुई को भी ढूंढ निकाले।

इन केवटों-मल्लाहों, गोताखोरो और मछुओ ने क्षिप्रा नदी को ऐसा मथा, जैसे कि देव-दानवो ने समुद्र का मथन किया था। नदी का निर्मल जल मट-मैला हो गया।

इस नदी-मथन का परिणाम यह हुआ कि चन्द्रमती के जीव वाला ग्राह एक पैने काँटे मे विध गया। मछुओ ने उसे ऊपर खीच लिया और तट पर पटक दिया। इसके साथ ही और भी मच्छ-कच्छ आदि जलजीव मछुओ के जाल मे फँस गये थे। वे के-सब ऊपर निकाल लिये गये। जाल में फँसे इन जल-जीवों मे मै भी था।

मेरे पुत्र गुणधर ने चन्द्रमती के जीव वाले मकर को पहले अग्नि मे तपाकर खूब तड़पाया, फिर उसे मार ही दिया। मेरा भी उसने हाल-वेहाल किया। पहले तो मछुए मुझे अपने ढंग से

ले आये । पानी के विना मैं भयकर कष्ट पाता था, तडप रहा था। मैं जलचर जीव थलचरों मे रहकर तडप रहा था। मेरा आकार काफी वडा था । रग भी मेरा लाल था, सो मछुए मुझे लेकर मेरे पुत्र गुणधर के पास पहुँचे ।

मुझे देखकर राजपुरोहित ने मेरे लक्षण वताते हुए राजा गुणधर से कहा—

"राजन् ! यह मच्छ तो वडा शुभ है। इसे पुण्डर मत्स्य कहते है। यह जल प्रवाह के विपरीत तैरता है। शास्त्रो मे इसे हव्य-कव्य के योग्य कहा है।

"हे राजन् ! विष्णु भगवान ने एक वार मत्स्य का रूप धारण किया। फिर जगत् कल्याण की भावना से छह अगो सहित चारो वेदो को प्रकट किया। अतः यह मत्स्य भी पवित्र और शुभ है। जिस जीव का शरीर भगवान विष्णु ने धारण किया था, वह भला पवित्र क्यो न होगा ?"

इसके साथ ही राजपुरोहित ने अन्यान्य वेदोक्त वाते मेरे पुत्र राजा गुणधर को समझाई। तदनन्तर गुणधर ने मुझे मेरी पत्नी अथवा अपनी माता नयनावली के पास भेजा और उससे प्रार्थना की—

"हे माता ! यह रोहित मत्स्य अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इसके माँस को यदि हम ब्राह्मणो को खिलाये तो हमार पितृगण तृप्त होगे। इसकी पूँछ पकाकर ब्राह्मणो खिलाओ।"

राजन् मारिदत्त ! मेरी पत्नी नयनावली ने जव मेरी पूँछ काटी तो मै ऐसा तडपा कि क्या कहूँ ? मेरी पूँछ का मास मेरे पुत्र गुणधर ने मेरे ही कल्याण के लिए ब्राह्मणो को खिलाया तथा शेषाग का मास उसने तथा अन्य परिजनो ने खाया। कैसी विडम्वना है यह ?

मेरा मास काटते और पकाते समय मुझे जो वेदना दी ग
उसका वर्णन मैं ही क्या शेष-शारदा भी नही कर सकते। न मैं
आटे के मुर्गे को मारता और न बार-बार मेरी ऐसी दुर्ग
होती। कर्म बड़ा बलवान है।

राजन् ! मुझे हर बार जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होता र
पर किसी भी बार मैंने भावना से धर्म का स्मरण नही कि
यदि करता तो तिर्यंच योनि से छुटकारा पा जाता। मानव-ज
के अतिरिक्त किसी भी जन्म में धर्माराधन करना सुलभ भी
है ? पर मानव-भव याद आने पर भावना से धर्माराधन अ
किया जा सकता है। मैंने वह भी नही किया। अभी तो
बहुत पापड़ बेलने थे। जो बोया था, सो बार-बार जन्म
काटना था।

राजन् ! इस तरह मैं और मेरी माता लगभग साथ-स
मरे और हमने अपना यह चौथा जन्म भी खो दिया। अब
क्या हुआ सो भी सुनो।

[५]

राजमाता चन्द्रमती पहले श्वान, फिर सर्प और फिर
ग्राह के बाद मरी तो उज्जयिनी के ही निकट एक गाँ
बकरी के उदर से जन्म लेकर बकरी बनी। तिर्यंच योनि की
यह मेरा और उसका चौथा जन्म था। मत्स्य का तीसरा
समाप्त करके मैं भी उसी बकरी के उदर से जन्म लेकर ब
बना। इस प्रकार चौथी तिर्यंच योनि मे हम उसी प्रकार मा
पुत्र बने जिस प्रकार कि पहले मानव-भव मे चन्द्रमती
यशोधर के रूप मे माता-पुत्र थे।

कालान्तर मे मै जवान हो गया । मेरी दाढी भी निकल आई ार मैं अपनी ही माता के साथ मैथुन कर्म करने लगा । हाय रे र्म । एक बार मैं अपनी माता के साथ मैथुन कर्म मे रत था कि ण्ड के नायक बकरे ने अपने पैने सीगो से मुझ पर प्रहार किया ौर मेरा उदर चीर-फाड डाला । मैं मर गया । मेरा चौथा जन्म माप्त हुआ और कर्म की विडम्बना यह हुई कि मेरा जीव मेरी ी माता बकरी के गर्भ में पुनः प्रविष्ट हुआ और मैं अपने ही ीर्य का भ्रूण बना ।

पशुओ का जीवन कैसा विचित्र होता है कि वहाँ जननी ही त्नी बन जाती है । किसी तरह की लोक-लाज वहाँ नही ोती ।

मै अपने ही वीर्य से उत्पन्न अपनी माँ के गर्भ मे गर्भ-पीडा ोगता हुआ रह रहा था । जिस बकरे ने मैथुनरत होते हुए मुझे ारा था, वही बकरा मेरी गर्भवती माँ के साथ एक दिन मैथुन- त था । तभी मेरा पुत्र गुणधर वन से लौट रहा था । उस दिन उसे कोई शिकार नही मिला था, इसीलिए खाली हाथ था । उसने मैथुनरत बकरा-बकरी को देखा तो अपने तीक्ष्ण खड्ग से त्काल मार दिया । दोनो मर गये । मैं अपनी माँ के गर्भ में था, सो उसी क्षण माँ के मरते-मरते मेरा भी जन्म हो गया ।

मेरा जन्म एक विचित्र ढंग से हुआ । जब गुणधर के खड्ग से घायल होकर मेरी माँ तडप रही थी, तो मैं भी उसके गर्भ मे अपने समस्त अगो से काँप रहा था । राजा ने मेरा कपन देखा तो मेरी माँ का उदर चिरवाया और मैं जीवित ही निकल आया ।

राजा गुणधर ने मै अपने अजारक्षक को सौंप दिया । कर्म-सयोग से मै पुन अपने पुत्र गुणधर के पास ही पहुँच गया ।

राजन् ! मैं हर वार उज्जयिनी या उज्जयिनी से आस-पास ही जन्म लेता था और हर वार ही अपने पुत्र गुणधर के निकट पहुँच जाता था। यह सब पूर्वसंस्कारों के कारण था। मैं मोर बना या बकरा मेरा जीव तो राजा यशोधर का ही था। इसी अज्ञात आकर्षण के कारण मैं गुणधर को बहुत प्रिय लगता था। इसीलिए जब मैं मोर योनि मे मारा गया तो गुणधरने मेरा अन्तिम संस्कार उसी श्रद्धाभाव से किया था, जिस श्रद्धाभाव से उसने पिता यशोधर के मरने पर मेरा किया था। इसीलिये बकरे के रूप मे भी वह मुझे बहुत चाहता था।

मै भवन वाटिका मे घूमा करता था। मेरा रंग काला था, सो गुणधर मुझे श्यामसुन्दर कहता था। मैं भवनवाटिका के सरोवर का पानी पीता था। जो भी हो, इस योनि मे मै सन्तुष्ट था। लेकिन मैं तब यह नही जानता था कि बकरे का जन्म ही कटने-मरने के लिए होता है। राजा गुणधर का अजापाल मुझे उसके आदेश से फल और मेवाएँ खिलाता था। मैं दिन-पर-दिन पुष्ट और मासल होता जाता था। मेरे कूल्हे वडे भारी और गुल-ल हो गये थे।

यद्यपि मेरा पुत्र गुणधर मुझे बहुत चाहता था, फिर भी मैं त उसका भक्ष्य ही। सो मुझे देखकर एक दिन वह [illegible]

—

"इसका मास तो वड़ा स्वादिष्ट होगा। क्योंकि यह फल-मेवा खाता है। लेकिन मैं इसे मारूँगा नही, क्योंकि उज्जयिनी के वनो मे वहुतेरे मृग है।"

मेरा मन होता कि मै अपने पुत्र को समझाऊँ और उसका अज्ञान दूर करूँ। उससे कहूँ कि आटे का मुर्गा मारकर मेरा तो

यह हाल है और तू जीवित मृगो को मारा करता है तो तेरा क्या हाल होगा। तू बलि-धर्मी ब्राह्मणो के चक्कर से मुक्त हो जा, वरना तू जाने कितने जन्मों तक यातना भोगता रहेगा। लेकिन मैं उसे कैसे समझाता ? मैं तो 'मैं' ही था—मनुष्य नही था। दिन-भर 'मैं-मैं' ही किया करता था। मेरी 'मैं' की भाषा कौन समझता ?

मेरा पुत्र गुणधर वन में शिकार खेलने जाता तो निराश लौटता। उसे हर दिन विफलता ही मिलती। एक दिन वह बहुत निराश हुआ और देवी के मन्दिर मे पहुँच उससे प्रार्थना करने लगा। उसने देवी से कहा—

"हे अम्ब ! तू तो शक्ति का रूप है। तू सिह-वाहिनी है। मुझ भक्त की पुकार सुन अम्बे ! मुझे आखेट मे बराबर विफलता मिल रही है।

"अम्बे ! मुझे आखेट मे सफलता दिला। मैं तेरी प्रतिमा के सम्मुख भैंसो की बलि दूँगा।"

इस प्रकार बार-बार प्रार्थना करने के बाद राजा गुणधर आखेट को गया। उस दिन सयोग से उसे सफलता प्राप्त हुई और मृगो को मार कर लाया। अत. उसने एक भैंसा काटकर देवी की प्रतिमा के आगे चढाया। उसने देवी की प्रतिमा को दूषित ही किया। पर वह तो यही समझता था कि देवी प्रसन्न हुई है।

फिर मेरा पुत्र राजा गुणधर भैंसे का मास महाप्रसाद के रूप मे लेकर घर आया। जैसे मेरी माता चन्द्रमती ने आटे के मुर्गे का मांस महाप्रसाद के रूप मे पकाया था, वैसे ही की माता नयनावली जो परपुरुषरता मेरी पटरानी भी अपनी देख-रेख मे रसोइये से महिष का मास

जब मास पक गया तो उसे जीमने वृकोदार ब्राह्मण आये। इनकी नगी देह पर जनेऊ पडा था। माथे पर तिलक था। इनकी धोती पीली थी। इन्होने ब्राह्मण वंश मे जन्म लिया था। इसलिए ब्राह्मण थे। वरना तो ये ब्रह्म को कहाँ जानते थे?

जो भी हो, जो वाह्मण मेरे पुत्र गुणधर के यहाँ मास जीमने आये थे, वे भी असुर ही थे। तो उन असुरो ने गुणधर राजा से कहा—

"राजन्! इस महिष मांस को बकरे के सामने रख दो। बकरा शाकाहारी है, इसलिए मास तो खायेगा नही, पर इसे सूँघेगा अवश्य। अजापुत्र के सूँघने से यह महिष-मास पवित्र हो जायगा।"

हे राजा मारिदत्त! महिष-मास मेरे सामने रखा गया। मैंने उसे सूँघा तो दुर्गन्ध के कारण मेरा सिर चकरा गया। जो भी हो, फिर वह मास ब्राह्मणो को परोसा गया। मास परोसने के बाद गुणधर ने यह प्रार्थना की—

"शूल-कपालधारिणी जगदम्बे! तू रक्तप्रिया है। तेरी प्रसन्नता के लिए मैं ब्राह्मणों को मांस-भोजन दे रहा हूँ। मेरा कल्याण करो!"

"राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। जगदम्बे तुम्हारे यश का विस्तार करेगी। अपने पिता यशोधर की तरह तुम भी यशस्वी बनो और जैसे आज तुम्हारे पिता स्वर्ग मे सुख भोग रहे है, वैसे ही तुम भी मरकर स्वर्ग प्राप्त करो।"

यह कह समस्त ब्राह्मणो ने मास खाना शुरू किया। राजा मारिदत्त! गुणधर ब्राह्मणो के आशीर्वाद से बडा प्रसन्न था। जिस पिता के स्वर्ग-सुख की कल्पना मे वह प्रसन्न था, उसका वह

पिता तो वकरे के रूप मे मैं लम्बी रस्सी से उसी प्रकार बँधा था, जैसे ससारी जीव कर्मरज्जु से बँधा रहता है।

मारिदत्त ! जब ब्राह्मण भोजन कर चुके तो मेरे पुत्र गुणधर ने उन्हे स्वर्णमुद्राए, आभूषण, वस्त्र, गो, भूमि आदि का दान दिया और कहा कि ये सभी वस्तुएँ मेरे स्वर्गवासी पिता को प्राप्त हो। कैसा घोर अज्ञान था ?

इसके वाद राजा गुणधर ने अपनी माता नयनावली तथा मेरी अन्य रानियो, अर्थात् अपनी विमाताओ के साथ महिष-मास का भोजन किया। इसके वाद मेरा पुत्र गुणधर अपने समस्त परिवार सहित मनोरजन करने बैठा। परिवार गोष्ठी जमी। नृत्य-गायन का कार्यक्रम चला।

मेरी समस्त रानियाँ, अर्थात् गुणधर की विमाताएँ स्वर्ण-मडित आसनो पर बैठी नृत्य देख रही थी। मेरा पुत्र गुणधर अपनी प्रिया कुसुमावली के साथ बैठा नृत्य देख रहा था। ये सब अपना सिर हिला-हिलाकर तान ले रहे थे। वीणा, बाँसुरी, ढोलक, मृदग आदि वाद्य ध्वनियो से समस्त वातावरण रागमय हो रहा था।

राजन् मारिदत्त ! यद्यपि मैं वकरा था, पर मुझे अपने प्रथम जन्म यशोधर की स्मृति थी, इसलिए नाद का आनन्द मैं भी ले रहा था। मैं अपनी रानियो को देख रहा था। वे वैधव्य की मारी थी। उनके अगों मे सूनापन था, क्योंकि सभी आभूषणों रहित थी। लेकिन इस परिवार गोष्ठी के वीच मेरी पटरानी, अर्थात् गुणधर की जननी नयनावली नही थी।

मैंने सोचा, 'वह तो विधवा होकर भी विधवा नही है। सगीत के ऐसे सरस वातावरण मे वह क्यो नही आई ?....संभव है, वह कुवडे दास के साथ रतिरग मे डूबी हो।'

जब मास पक गया तो उसे जीमने वृकोदार ब्राह्मण आये। इनकी नंगी देह पर जनेऊ पड़ा था। माथे पर तिलक था। इनकी धोती पीली थी। इन्होंने ब्राह्मण वश मे जन्म लिया था। इसलिए ब्राह्मण थे। वरना तो ये ब्रह्म को कहाँ जानते थे?

जो भी हो, जो ब्राह्मण मेरे पुत्र गुणधर के यहाँ मास जीमने आये थे, वे भी असुर ही थे। तो उन असुरो ने गुणधर राजा से कहा—

"राजन्! इस महिष मांस को बकरे के सामने रख दो। बकरा शाकाहारी है, इसलिए मांस तो खायेगा नही, पर इसे सूँघेगा अवश्य। अजापुत्र के सूँघने से यह महिष-मास पवित्र हो जायगा।"

हे राजा मारिदत्त! महिष-मास मेरे सामने रखा गया। मैंने उसे सूँघा तो दुर्गन्ध के कारण मेरा सिर चकरा गया। जो भी हो, फिर वह मास ब्राह्मणो को परोसा गया। मास परोसने बाद गुणधर ने यह प्रार्थना की—

"शूल-कपालधारिणी जगदम्बे! तू रक्तप्रिया है। तेरी प्रसन्नता के लिए मैं ब्राह्मणों को मांस-भोजन दे रहा हूँ। मेरा कल्याण करो देवी!"

"राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। जगदम्बे तुम्हारे यश का विस्तार करेगी। अपने पिता यशोधर की तरह तुम भी यशस्वी बनो और जैसे आज तुम्हारे पिता स्वर्ग मे सुख भोग रहे है, वैसे ही तुम भी मरकर स्वर्ग प्राप्त करो।"

यह कह समस्त ब्राह्मणो ने मास खाना शुरू किया। राजा मारिदत्त! गुणधर ब्राह्मणो के आशीर्वाद से बड़ा प्रसन्न था। जिस पिता के स्वर्ग-सुख की कल्पना मे वह प्रसन्न था, उसका वह

पिता तो बकरे के रूप मे मैं लम्बी रस्सी से उसी प्रकार बँधा था, जैसे संसारी जीव कर्मरज्जु मे बँधा रहता है।

मारिदत्त ! जब ब्राह्मण भोजन कर चुके तो मेरे पुत्र गुणधर ने उन्हें स्वर्णमुद्राए, आभूषण, वस्त्र, गो, भूमि आदि का दान दिया और कहा कि ये सभी वस्तुएँ मेरे स्वर्गवासी पिता को प्राप्त हो। कैसा घोर अज्ञान था ?

इसके बाद राजा गुणधर ने अपनी माता नयनावली तथा मेरी अन्य रानियों, अर्थात् अपनी विमाताओ के साथ महिष-मास का भोजन किया। इसके बाद मेरा पुत्र गुणधर अपने समस्त परिवार सहित मनोरजन करने बैठा। परिवार गोष्ठी जमी। नृत्य-गायन का कार्यक्रम चला।

मेरी समस्त रानियाँ, अर्थात् गुणधर की विमाताएँ स्वर्ण-मडित आसनो पर बैठी नृत्य देख रही थी। मेरा पुत्र गुणधर अपनी प्रिया कुसुमावली के साथ बैठा नृत्य देख रहा था। ये सब अपना सिर हिला-हिलाकर तान ले रहे थे। वीणा, बाँसुरी, ढोलक, मृदग आदि वाद्य ध्वनियो से समस्त वातावरण रागमय हो रहा था।

राजन् मारिदत्त ! यद्यपि मैं बकरा था, पर मुझे अपने प्रथम जन्म यशोधर की स्मृति थी, इसलिए नाद का आनन्द मैं भी ले रहा था। मैं अपनी रानियो को देख रहा था। वे वैधव्य की मारी थी। उनके अगो मे सूनापन था, क्योंकि सभी आभूषणों रहित थी। लेकिन इस परिवार गोष्ठी के बीच मेरी पटरानी, अर्थात् गुणधर की जननी नयनावली नही थी।

मैंने सोचा, 'वह तो विधवा होकर भी विधवा नही है। संगीत के ऐसे सरस वातावरण मे वह क्यो नही आई
है, वह कुबडे दास के साथ रतिरग मे डूबी हो।'

राजन् ! मैं पर-पुरुष-भोग्या नयनावली को देखने के लिए उत्सुक हो उठा। मेरी रस्सी, जिससे मैं बँधा था, काफी लम्बा था, सो मैं कुछ आगे बढ गया। तभी अलिन्द मे बैठी दासियो की बाते मैने सुनी। वे नयनावली के विषय मे ही बातें कर रही थी। मैं खडा होकर बडे ध्यान से उनकी बातें सुन रहा था।

एक दासी अचल के छोर से अपनी नाक ढके कह रही थी—

"उफ् ! नाक फटी जाती है। कैसी दुर्गंध है यहाँ ! भैंसे को मारने के बाद यहां की सफाई अच्छी तरह से नही की गई।"

इस पर एक दूसरी दासी उक्त दासी के अज्ञान पर हँसने लगी। दूसरी को हँसते देख पहली ने कहा—

"मैं क्या गलत कह रही हूँ ? लगता है तुझे पीनस का रोग है सो तुझे दुर्गन्ध नही आती।"

दूसरी दासी बोली—

"दुर्गन्ध तो मुझे भी आ रही है। पर मैं तो तेरे अज्ञान पर हँस रही हूँ। भैंसे के मांस-रक्त की गन्दगी यहाँ कहाँ है ? अरी पगली ! यह दुर्गन्ध तो अब रहेगी ही। बडी राजमाता नयनावली के तन से कोढ फूटने लगा है। उसी के रक्त-पीव की दुर्गंध फैल रही है।"

"अरे हां ! यह कैसे ?" पहली दासी ने आश्चर्य से कहा— "कुछ दिन पहले तो वह भली-चंगी थी। अचानक ही यह क्या हो गया ?"

दूसरी दासी ने बताया—

"यह भी कोई बात हुई ? हर दुःख की जड़ मे दोष होता

है। और दुराचार से बडा कोई दोष नही। कोई कितना ही छिपाये, पाप छिपता नही है। इस दुष्टा रानी नयनावली ने अपने प्रेमी कुबडे के पीछे अपने पति राजा यशोधर को विष देकर मार दिया था। उसी का फल भोग रही है। देखती जा, अभी तो और भी भगेगी।"

• "पर इसने सुख भी तो खूब भोगे।" पहली दासी ने दूसरी से कहा—"इस पापिनी ने गुलछर्रे भी खूब उडाये।"

"इसमे आश्चर्य कुछ भी नही।" दूसरी दासी बोली—"मनुष्य न तो निरा पापी ही होता है और न मात्र पुण्यात्मा ही। पाप-पुण्य—वह दोनो ही या तो करता है या कर बैठता है। इसने पूर्वभव मे कुछ पुण्य भी किये होगे, सो मालवेश्वरी बनी और अब राजमाता है। अब पाप भी फूटने लगा है। अन्तर इतना है कि पुण्यात्मा पहले कष्ट भोगता है और बाद मे सुख। इसके विपरीत इस पापिनी ने पहले सुख भोगा और अब कष्ट भोग रही है। मरकर नरक मे जायेगी।"

राजन् मारिदत्त! दासियो की ये बाते मैंने सुनी। मेरी दासियाँ कितनी विवेकवती थी। कर्म का फल 'अवश्यमेव भोक्तव्य, कहा गया है। रस्सी से बँधा बकरे के रूप मे मैं भी तो नरक भोग रहा था। तनिक सी भूल का कैसा भयंकर परिणाम था! मात्र आटे का ही मुर्गा तो मैने काटा था, सो मोर, नेवला, मच्छ, बकरा और फिर **बकरा—मैं** अवर्णनीय कष्ट भोगता रहा। मेरी

मक्खियाँ भिनभिना रही थी। अग गल गये थे। जहाँ-तहाँ पीब रिस रहा था। उसके तन से दुर्गन्ध तो ऐसी आ रही थी कि क्या कहूँ !

नयनावली की उपमा रंभा और रति से दी जाती थी। उसकी देह-कान्ति ऐसी थी मानो सिन्दूर और चन्दन के मिश्रण से उसकी देह को रगा गया हो। पर आज उसे देखकर घृणा आती थी। मन ग्लानि से भर जाता था। वे लोग कितने अविवेकी है, जो रात-दिन अपने शरीर को सुन्दर बनाने मे लगे रहते है, शरीर की वास्तविकता से अनजान !

नयनावली का रूप ऐसा विकृत हो गया था कि मै उसे पहचान भी नही सका। उसके जिस अधर का पान उसका उपपति कुबड़ा करता था, वह अधर गलकर गिर गया था। रक्ताभ कपोलो मे गड्ढे पडे थे।

मैं उसे देख ही रहा था कि उसकी दासी उसके लिए महिष का मांस लेकर आई। दासी ने उससे कहा—

"महारानीजी ! यह मास महाप्रसाद ग्रहण कीजिए। आपके पूर्वजो की आत्म-संतुष्टि के लिए ब्राह्मणो को इसी का भोज दिया गया है।"

इस पर नयनावली ने अकड़कर कहा—

"जा, ले जा इसे। मैं महिष का मास हरगिज नही खाऊँगी। मुझे यह अच्छा नही लगता। मेरे लिए किसी अन्य जीव का मास ले आ। मुझे बड़ी जोर की भूख लगी है।"

दासी चुपचाप चली गई और रसोइये से जाकर सब कुछ कह दिया। रसोइया घबराया। आखिर तो नयनावली राजमाता थी। उसकी बात कैसे टाली जाती ? पर इतनी जल्दी किसी अन्य

जीव के मांस का प्रबन्ध कैसे होता ? प्रबन्ध भी करना ही था। सो रसोइये ने मेरी ओर ललचाई निगाहो से देखा।

मै वहुत हृष्ट-पुष्ट था। मुझे दूध मे भिगोकर जौ खिलाये जाते थे। मेरे कूल्हे और नितम्ब मास से वहुत थुलथुल हो गये थे। जब रसोइया मुझे देख रहा था तभी मेरा पुत्र गुणधर भी वहाँ आ गया। उसने रसोइये द्वारा अपनी माता की इच्छा अपर मास खाने की सुनी तो रसोइए से कहा—

"देखते क्या हो ? इसी बकरे का मास काट लो। ब्राह्मण जन इसे पवित्र बताते है। इसके सूँघने से भोजन पवित्र हो जाता है। आज माँ को इसी का मास खिलाओ। माँ की आत्मा को भी सतोष मिलेगा."

यह सुनते ही मै तो काप गया। मेरा शरीर तीव्र ज्वरग्रस्त की तरह थरथर काँपने लगा। पर मै करता क्या ? रसोइया रूप वधिक ने मेरा पिछला एक पैर काट दिया और मेरे पैर का माम मेरी पटरानी नयनावली को भून कर खिलाया।

हाय रे मेरे भाग्य ! मैं तीन पैरो पर खडा मिमिया रहा था। इससे तो अच्छा यही होता कि मैं मार दिया जाता। ऐसा कोई नही था जो मेरी पीडा को सुनता। सच ही तो घोर पाप के कारण ही जीव बकरे का जन्म पाते है।



[६]

अपनी आत्मकथा सुनाते हुए कुछ क्षण के लिए बालमुनि अभयरुचि मौन हो गये। राजा मारिदत्त तथा उपस्थित पं पुजारी, जनता सभी की आँखे गीली हो रही थी, निर्वेद भावो धारा मे सभी बह रहे थे। मुनि ने तभी कथा सूत्र जोडते हु कहा—

राजन् ! अपनी ही माता के साथ भोग करके मेरा जी बकरा से बकरी माता के गर्भ मे आया। गर्भ विकास लगभ पूरा हो गया था। तभी वन से बिना शिकार के खाली हा लौटते हुए राजा गुणधर ने उक्त बकरी को खड्ग से मार दिया वह तडपने लगी। उसके उदर में मैं भी तड़प रहा था। रा गुणधर ने आठो अगो से मेरा कांपना देखा तो बकरी का उ चिरवाया और मुझे जीवित निकाल लिया।

चन्द्रमती के जीव वाली बकरी—दोनो तरह से मेरी मा मर गई और मेरा पालन-पोषण गुणधर के यहाँ उसका अनाज करने लगा। आज मेरी दुर्दशा तो यह हुई कि मैं तीन टांग ही जिन्दा रहा। बकरी का भव त्यागने के बाद मेरी माता च मती के जीव का क्या हुआ, सो वह अब तुम चित्त लगा सुनो।

चित्त लगाकर सुनने से ही तो मालूम पडेगा कि कर्म वडे कठोर होते है। वे किसी को नही छोड़ते। मैंने तो आटे के मुर्गे का वध किया था, पर मेरी माता चन्द्रमती ने तो वध की प्रेरणा ही दी थी। उसी प्रेरणा से उसने भी वार-वार तिर्यंच योनि ही पाई। बकरी के वाद वह महिष यानि भैसा वनी।

वकरी का तन त्यागकर मेरी माता चन्द्रमती का जीव सिन्धु देश मे भैसा वनी। वह भैसा यमवाहन के रूप मे साक्षात् यम ही लगता था। उसका रग वहुत गहरा काला था। उसकी आँखे तावे के रग की थी, मानो अगारे दहकते हो। वह वहुत ही वलिष्ठ और खूँख्वार था।

वह भैसा एक व्यापारी के पास था। व्यापारी उसे छकडे मे जोतकर उससे माल ढोता था। अधिक भार के कारण वह छकडा खीचते समय जीभ निकाल लेता था। जव भी उसकी चाल रुकती, उसका हाकने वाला ,उसमे मार लगाता था। इस तरह मेरी माता चन्द्रमती भैसे के रूप मे अपने कर्मो का वोझ ढो रही थी।

एक वार सिन्धु देश का वणिक् माल से भरी अपनी भैसा गाडी लेकर उज्जयिनी आया।' उसने भैसे को क्षिप्रा नदी मे पानी पिलाया तो भैसा गरमी के कारण पानी मे ही पैठ गया और उसी मे ही लोटने लगा। उसने नदी मे खलवली मचा दी। तभी राजा गुणधर के घोडे को लेकर उसका अश्वपाल उसे पानी पिलाने क्षिप्रा तट पर आया।

घोडा तो दौडने मे ही तेज होता है। द्वन्द्व युद्ध वह क्या जाने ? उस वेचारे के सिर पर सीग भी कहाँ होते हैं ? भैसा स्व-भावतः ही अश्व के प्रति वैर रखता है। सो यह भैसा भी नदी

से निकल राजा गुणधर के अश्व पर टूट पड़ा और अपने पैने सीगो से उसे मार दिया ।

राजा का घोड़ा मारा जाना सामान्य घटना नही थी । गुणधर के सेवको ने लाठी-भालो से उस अश्वहन्ता भैंसे को खूब पीटा और फिर उसे रस्सों मे बांधकर राजा गुणधर के पास ले गये ।

राजसेवको ने मेरे पुत्र गुणधर से कहा—

"पृथ्वीनाथ ! इस यमदूत ने आपके अश्व को मारा है। इसे भी मृत्यु दण्ड दीजिए ।"

क्रुद्ध होकर राजा ने कहा—

"मृत्युदण्ड तो मै इसे दूंगा ही, पर इसे तड़पा-तड़पा कर मारना है ।"

यह कह राजा गुणधर ने भैंसे को मारने का ढग अपने सेवको को बता दिया । राजसेवक उसे एक खुले और लम्बे चौड़े बाड़े मे ले गये । वही पर मैं भी अपनी तीन टागो मे पड़ा अपने कर्मों के लिए आँसू बहा रहा था ।

राजन् मारिदत्त ! मेरे पुत्र गुणधर के सेवको ने चन्द्रमती के जीव वाले भैंसे की नाथ पकड कर उसका मुंह बाध दिया । फिर मरोड कर उसकी पूंछ भी पिछली एक टाग मे बाध दी । उसके बाद उसे चारों ओर से साकलो से ऐसे जकड़ा गया कि वह हिल-डुल नही सकता था । फिर उसके पेट के नीचे आग जला दी ।

भैंसा झुलस-रहा था और पीडा के कारण बड़ी भारी चीख पुकार करता था । उसका महाकष्ट मैं विवश होकर देख

ा किन्तु राजा के सेवको के लिए तो वह एक तमाशा ही था। सव उसे जीवित भूनकर राजा को खिलाना चाहते थे।

फिर उन दुष्टो ने सोठ, त्रिफला आदि रेचक पदार्थों से मिश्रित पानी भैसे के सामने रख दिया। प्यास के कारण भैसा स पानी को पी गया। थोडी ही देर वाद उसने पतला गोवर किया। उसके चीत्कार मे वडा दर्द था।

भैसे का जितना भाग भुन गया था, उतना काट लिया। फिर तो उसने वडी ऊँची आवाज के साथ प्राण ही छोड दिये। इधर ाजसेवको ने मुझे भी उस अग्नि की भेट चढा दिया, जिसमे ैसा जीवित ही भुना था। हम दोनो ही माता-पुत्र एक चिता जला दिये गये। इतने पर भी हमारे कर्म-भोगो का अन्त ही हुआ था।

राजन् मारिदत्त! अपनी पितामही, अर्थात् मेरी माता न्द्रमती के नाम से मेरे पुत्र गुणधर ने भैसे का मास पुन ाह्मणो को खिलाया और मेरा मास मेरे ही कल्याण के लिए विप्रो को खिलाया। अव उसके अज्ञान को वार-वार क्या हूँ? गुणधर के ही समान मूर्खो से यह ससार भरा पडा है। पने पिता की तृप्ति के लिए ही पिता का मास खाना-खिलाना ससे वडा मजाक और क्या होगा?

इस प्रकार मुझ यशोधर राजा और मेरी माता चन्द्रमती ा छठा भव साथ ही साथ समाप्त हुआ। सातवे भव मे हम ोनों साथ-साथ जन्मे और एक मुर्गी के उदर से उत्पन्न सफेद ग के मुर्गे वने।

[७]

उज्जयिनी के दक्षिण मे चाण्डालो की एक

कलूटे डोम-चाण्डाल यहाँ रहते है। इन्हें स्वभाव से ही दोष-दूषण, हिंसा आदि प्रिय हैं। इनकी रोजी-रोटी ही घृणित कर्म से चलती है।

मरे हुए पशुओं की खाल उतारने का काम ये चाण्डाल करते हैं। इनके घरो मे भी हड्डियाँ पड़ी रहती है, क्योंकि ये मांसभोजी भी हैं। 'घर की मुर्गी दाल बराबर' इस उक्ति को चरितार्थ करने के लिए ये चाण्डाल मुर्गियां और मुर्गे भी पालते है। जब मन मे आया, तब मुर्गी की गरदन ऐंठ दी और पेट मे पहुँचा दिया। कभी-कभी मौका देखकर कुत्ते-बिल्ली भी मुर्गे-मुर्गियों का कलेवा कर जाते है।

चाण्डाल बस्ती मे घरों के बाहर जहा-तहा मृत पशुओं के खुर, सींग, रोम, चर्म और हड्डियों के टुकडे पड़े रहते हैं। कितना वीभत्स दृश्य होता है वहाँ का....!

हे राजन् मारिदत्त! उज्जयिनी की इसी चाण्डाल बस्ती मे एक मुर्गी के गर्भ से हमारा जन्म हुआ। मेरी माता चन्द्रमती का जीव भी मेरे साथ मुर्गा बना। जब हम अण्डे के भीतर थे, तब हमारी माता मुर्गी अपने पखो की गरमी पहुँचाकर हमारी वृद्धि करती थी। यथासमय हमारा विकास भीतर-ही-भीतर हो गया तो हम अण्डे से बाहर निकले।

हमारी माँ मुर्गी कूडे-कर्कट के ढेर से कीड़े-मकोड़े आदि अपनी चोंच मे रखकर हमारे लिये ले आती थी और हमें खिलाती थी। हम बडे हो गये और कुछ बोलने भी लग गये। एक दिन एक बिल्ली ने हमारी माता मुर्गी की गर्दन तोड़ दी और हमें अनाथ बना दिया।

एक दिन हमारी पालिका चाण्डालिनी अपने घर का कूडा ाहर घूरे पर फैंकने गयी तो कूडे के साथ उसने हमे भी रख दया और कूडे सहित हमे घूरे पर फेक दिया। हम हड्डियो, ुरो, मास के टुकडो आदि ढेर मे दब गये। हम कुकड़ूकूं करने गे तो चाण्डालिनी ने पैर के अँगूठे से हमे कुरेदा और पैर से मे छूकर बोली—

"अरे, ये बच्चे भी कूडे मे आ गये! मै भी कितनी मूर्ख हूँ।"

पैर की ठोकर लगाकर चाण्डाली ने हमे उठाकर टोकरी मे खा। यह सब कर्मों की ही तो विडम्बना थी कि चाण्डालिनी ुझे पैर की ठोकर मार रही थी। एक दिन वह भी था, जब मालवेश्वर यशोधर था और बडे-बडे राजा मेरे समक्ष सिर ुकाया करते थे।

फिर चाण्डालिनी हमे अपने घर ले गई और बिल्ली से चाते हुए यत्नपूर्वक हमारा पालन करने लगी। फिर तो हमारे ख भी निकल आये। हमारे पक्ष सफेद थे। दूध के फेन-जैसा मारा रग-रूप था। हमारी अरुण शिखा बडी अच्छी लगती ी। हम प्रत्येक प्रहर के अन्त मे स्वभावत ही कुकड़ूकूं के प्लुत वर मे बोलते थे।

राजन्! ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत ये तीन तरह की स्वर-वनियाँ होती है। बहुत-से पक्षी चिउँ-चिउँ, टुट-टुट ह्रस्व स्वर े बोलते है। मोर मेहू-मेहू—दीर्घ स्वर मे बोलता है। अनेक चिडियाँ भी ची-ची, के-के करके दीर्घ स्वर मे ही बो र एक मुर्गा ही ऐसा है, जो प्लुत स्वर मे—दीर्घ से ध्वनिमात्रा के साथ बोलता है।

हम जब सवेरे ब्राह्म मुहूर्त मे बोलते थे, तो भ।

थे—अब कब तक सोयेगा ? अब तो जाग जा मूर्ख ! न दिन में जागकर भी तो सोता ही है। इसी तरह रात-दिन के प्रहर की समाप्ति पर हमारा बोलना एक चेतावनी था। प्रहर यो ही बीत रहा है। इन प्रहरो के साथ तुम भी तो बीत रहे हो।

हे राजन् मारिदत्त ! हम कूडे के ढेरो पर घूमने फिरते थे। पंजो से कूडा कुरेद-कुरेदकर अपना भक्ष्य खोजते थे। ऐसा था हमारा जीवन। हम बडे अच्छे लगते थे। बच्चे हमें गोद में उठाकर घूमते थे। अब इतना भी कहे कि हमारी तिर्यंच योनि का यह अन्तिम पड़ाव था। अब आगे क्या हुआ, यह सुनो। इस भव मे हमने कैसे त्राण पाया, यह कहानी भी बड़ी रोमांचकारी है।

हर जन्म मे कभी तो गुणधर—मेरा बेटा गुणधर हमें या तो स्वय मारता था, या मरवाता था। इस जन्म में तो हम सीधे-सीधे उसी के द्वारा मारे गये।

उन दिनो आखेट का दुर्व्यसन क्षत्रियो मे बडे जोरो पर था लेकिन सभी क्षत्रिय राजा आखेटप्रिय नही थे। जो श्रमण-धर्म से प्रभावित हो चुके थे और जिन्होने निर्ग्रन्थ मुनियो की वाणी सुनी थी, वे तो आखेट, युद्ध और हिंसा से प्रायः विरत ही रहते थे। वे सब ऐसा मानते थे कि हिरन, तीतर, मुर्गा आदि निरीह जीव तथा मनुष्य अपने-अपने कर्मो के कारण ही भिन्न-भिन्न योनियो मे उत्पन्न हुए है, पर श्रावकव्रती राजा सभी जीवों को पुत्र की तरह मानते थे और वे अभयदानी थे।

इसके विपरीत मेरा पुत्र गुणधर तो अनार्य बुद्धि वाला था। वह हिंसा में ही मुक्ति मानता था। वह प्रायः ही वन में घू

का वध करने जाता था। उसने एक अलग आखेट दल की व्यवस्था की थी। इस दल मे सैकड़ो शिकारी कुत्ते भी थे। गुणधर के सामन्त, सभासद तथा नगररक्षक आदि प्रशासक अधिकारी भी हिंसा मे रुचि रखते थे।

राजा गुणधर सहित सभी लोग फुर्सत के समय मे पशु-पक्षियो को लडाकर मनोरजन करते थे। मेषयुद्ध, कुक्कुट-युद्ध, महिषयुद्ध और तीतर द्वन्द्व के उज्जयिनी मे स्थान-स्थान पर अखाडे बने हुए थे। इन युद्धो के बहुत-से शौकीन उज्जयिनी मे रहते थे। जब दो मुर्गे अखाडे मे उतरते तो दोनो पक्ष अपने-अपने मुर्गे को प्रोत्साहन देकर लडाते थे। लडते-लडते जब दोनो लहूलुहान हो जा‍ते, तो भी इस पीडाप्रद मनोरंजन का अन्त नही होता था। इसका अन्त तब होता जब एक मुर्गा अखाड़ा छोड कर भाग जाता। इसी तरह से कभी महिष आपस मे लडते तो कभी तीतर और मेष।

राजन् मारिदत्त! मेरे पुत्र गुणधर को भी कुक्कुट आदि के युद्ध करने-कराने और उन्हे प्रोत्साहन देने का शौक था। उसका नगररक्षक अथवा कोतवाल स्वय भी शौकीन था और राजा के इस शौक मे सहयोगी था।

उज्जयिनी का नगररक्षक एक दिन चाण्डालो की बस्ती मे जा पहुँचा। उसके साथ दस-बीस आरक्षी जवान भी थे। वह किसी चोर की तलाश मे था और उसका विश्वास था कि रात मे ये चाण्डल लोग ही चोरी करते हैं।

नगररक्षक ने कई चाण्डालो को पीटा, पर किसी ने चोरी करना कबूल नही किया। जब वह चाण्डालो को धमका रहा था, तभी उसे हम दिखाई दे गये। हम घूरे पर

अपने पंजो तथा चोच से कीड़े-मकोडो को ढूंढ-ढूंढकर खा रहे थे। हमे देख नगर-रक्षक ने कहा—

"अरे, ये मुर्गे तो वहुत सुन्दर है! किसके है ये? इनके पर कैसे सफेद है, मानो धुनी हुई रुई का टुकडा हो।"

बस फिर तो नगररक्षक का मन हम पर ललचा गया। इतना साहस किसका था, जो हमे लेने से उसे रोकता? नगर रक्षक ने हम दोनो को अपनी गोद मे उठा लिया और मन ही मन वडवडाया—'इन्हे लड़ना सिखाऊँगा। इनका युद्ध देखकर राजा गुणधर वहुत प्रसन्न होगे।'

फिर नगररक्षक हमे लेकर मेरे पुत्र गुणधर के पास पहुँचा। गुणधर ने जव हमें देखा तो देखते ही उसकी अज्ञात प्रीति उमड़ आई। उसने हम दोनो को नगररक्षक से ले लिया और अपने हाथ मे लेकर हम पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरने लगा।

जीव किसी भी रूप को प्राप्त करे, मनुष्य का या पशु का, पुराने सम्पर्क-सस्कार के कारण वह किसी को प्रिय और किसी को अप्रिय लगता है। यही सिद्धान्त तो हम पर लागू हो रहा था। अपने हर जन्म मे हम गुणधर के निकट रहे थे। यशोधर और चन्द्रमती के जन्म मे हम उसके पिता तथा पिता की माता—पितामही थे। फिर मोर और श्वान के जन्म मे भी उसके पास रहे। मत्स्य और अज के रूप मे भी गुणधर ने मेरा मास खाया था। अव मुर्गे का रूप पाकर भी हम उसी के निकट आ गये और इसीलिए उसे वहुत भा गये।

हमारे पखों पर प्यार से हाथ फेरते हुए गुणधर ने नगर रक्षक से कहा—

"इन्हे तुम अपने पास ही रखो। इन्हे लड़ना सिखाओ। मैं इनका युद्ध देखूंगा।"

फिर नगररक्षक हमे बडे यत्न से पालने लगा। फिर तो हम राजा गुणधर को इतने अच्छे लगे कि दिन मे हमे अपने पास ही रखता। रात को ही नगररक्षक हमे अपने घर ले जाता।

जव हम वडे हो गये तो एक दिन राजोद्यान मे कुक्कुट-युद्ध का कार्यक्रम निश्चित हुआ। राजा गुणधर अपनी पटरानी कुसुमावली तथा अन्य रानियों सहित राजोद्यान गया। उसने नगररक्षक को भी आदेश दिया कि मेरे प्यारे कुक्कुटो को लेकर राजोद्यान पहुंचना।

किसी दिन जो मेरा यानी यशोधर का राजोद्यान था, वह बडा ही सुन्दर था। पर अव तो वह गुणधर का ही था। मैं तो मुर्गा था। केवल भगवान के सिवा इस रहस्य को कौन जानता था कि जिन मुर्गों को राजा गुणधर इतना चाहता है, उनमे से एक उसका पिता यशोधर और दूसरा उसकी पितामही चन्द्रमती है। तो अब वह विशाल उद्यान गुणधर का ही था।

मेरे पुत्र राजा गुणधर का उद्यान बहुत विस्तृत क्षेत्र मे था। उसमे अनेको प्रकार के वृक्ष थे। सब के नाम गिनाना भी मुश्किल है। आम, जामुन, वट, गूलर, पीपल, पाखर, अजीर, अर्जुन, खैर, शीशम, शाल्मली आदि अनेको वृक्ष। जो कड़ुआ है और साथ ही गुणकारी भी उस नीम के भी बीस-बाईस वृक्ष थे। केलो के वृक्षो की शोभा भी न्यारी थी। अशोक के भी कई वृक्ष थे। इन वृक्षो पर बन्दर-लगूर बैठे नकी कू-कू, हू-हू से उद्यान गूँज उठता था। ची

टी-टी, टुट-टुट के मिले-जुले स्वरो से पक्षी कलरव किया करते थे।

गुणधर के इस राजोद्यान मे बडे सुन्दर और मनोहारी ... कुञ्ज और लतामण्डप थे। बैठने के लिए स्थान-स्थान पर ... के आसन बने हुए थे। छोटे-छोटे अठारह तो सरोवर थे। जिनमें ऐसा स्वच्छ और निर्मल जल भरा था कि तल मे पडी सुई भी दिखाई दे। इस उद्यान की लम्बाई नापने मे आँखें असमर्थ थी। उसे तो पैर ही नाप सकते थे।

इसी मनोरम राजोद्यान मे राजा गुणधर अपनी ... कुसुमावली के साथ बैठा गप-शप कर रहा था। बिना किसी ओर-छोर के कोई बात छिड जाती और फिर दोनो उसी पर बातें करते। बातो ही-बातो मे स्वतः प्रसग बदल जाता और दूसरा आ जाता। इसी क्रम मे राजा गुणधर ने रानी से कहा—

"हमारे ब्याह को हुए वर्षों बीत गये। पर अभी तक संतान नही हुई। अब तो कुछ-न-कुछ करना पडेगा।"

"क्या ?" कुसुमावली ने पूछा।

गुणधर बोला—

"पुत्र की कामना से मैं अपनी कुलदेवी को जीवों की बलि दूँगा तब वे पुत्र का वरदान देंगी। यदि मेरे पुत्र नही होगा तो यशबंधुर, यशोघ और यशोधर के वंश का क्रम मुझ गणधर के बाद ही समाप्त हो जायगा।"

रानी बोली—

"पशुओं के पास भी आपकी तरह धनुष-बाण ... ... देखती कि आप उन्हें कैसे मारते। मनुष्य इनकी बलि इसीलिए देता है कि वे निहत्थे हैं।"

"सब तो निहत्थे नही है।" गुणधर बोला—"मनुष्य के पहले सिर है, फिर हाथ है और पशुओ के हाथरूपी सीग पहले दिये है। गाय पहले सीग मारती है। सिंह के नखो को ले लो, वे किस भाले और खड्ग से कम है।"

"इस उदाहरण से तो आप की ही काट होती है।" रानी बोली—"मनुष्य के सिर पहले है और हाथ बाद मे। इसका अर्थ है कि वह पहले सोचे-विचारे बाद मे क्रिया करे, यानी हाथो का उपयोग सिर के बाद होना चाहिए। पर आज तो सब उल्टा होता है। मनुष्य क्रिया करता चला जाता है, सोचता नही है।

"नही तो। सभी पहले सोचे हुए हैं कि बलि देने से देवी प्रसन्न होती है।" गुणधर ने कहा—"ऐसा सोचने के बाद ही तो हम पशुओ का वध करते, यानी हाथ की क्रिया करते है।"

"ऐसा नही है स्वामी!" कुसुमावली बोली—"मैं दो उदाहरण देती हूँ। परसो मुझे ज्वर आया था। आपने कहा कि अरे, तुम्हे ज्वर है तो यह किस औषध से ठीक होगा? राजवैद्य से ऐसी औषध देने के लिए कहूँगा कि तीन-चार घडी मे बुखार चला जाये।

"स्वामी! औषध देना, ज्वर कैसे दूर हो यह सोचना—एक क्रिया है। इसके विपरीत सिर का काम यह है कि पहले यह सोचे कि ज्वर आया क्यो? जब ज्वर का कारण पता चल जाए तब तो क्रिया कुछ दूसरी ही होगी। फिर औषध विचार से हट जायेगी। क्योकि औषध न खाने से ज्वर अ तो औषध खाने से ठीक होगा। ज्वर का कारण श

दु:ख के पीछे दोष होता है। दोष हटेगा तो

दोष को जाने बिना और उसको दूर किये बिना यदि दुःख हटाने का प्रयास किया जायगा तो यह क्रिया विचारहीन क्रिया है।

"बड़ी लम्बी शास्त्र-चर्चा छेड़ दी तुमने।" राजा गुणधर ने हँसकर कहा—"किस दोष से ज्वर आया है, यह जाने बिना भी जब यह सोचकर औषध दी जाती है कि ज्वर भगाना है तो भी ज्वर मिटता है कि नही ? तुम्हारा ज्वर भी तो औषध खाने से ही मिटा था।"

"नही स्वामी, नही।" कुसुमावली बोली—"बिना दोष जाने दुःख मिटाने के प्रयास से दुःख टल तो जाता है, पर मिटता नही। मुझे ज्वर उदर-दोष से आया था। सो मैंने उपवास किया, पेट शुद्ध हुआ, ज्वर मिट गया। औषध को श्रेय मिल गया। तप से दोष मिटते है, और रोग एक प्रकार का प्राकृतिक उपचार-संकेत अथवा वह हमारे कर्म का भोग है। श्रम में पड़े खाना और अधिक खाना एक दोष भी है और अशुभ कर्म भी। ... : कर्म-भोग के सिद्धान्त के अनुसार ज्वर या कोई भी रोग कर्म-भोग है। कर्म का क्षय तो भोगने से ही होगा। चूँकि यह निद्धत्त कर्म है, इसलिए तप से मिटेगा। अत. या तो स्वयं ही उपवास करके तप करे या जब रोग आये तो उसे प्राकृतिक तप माने।

"आर्यपुत्र ! दूसरा उदाहरण मेरे पुत्रवती बनने का है। आप जीवो की बलि देकर क्या मेरे उस दोष या पूर्वकृत पाप को मिटा देंगे, जिसके कारण मैं सन्तानहीन हूँ ?"

"तुम कहाँ की बातें ले बैठी।" गुणधर ने प्रसंग बदलते हुए कहा—"आज मैं तुम्हें अपने शब्दवेधी बाण का चमत्कार

देखे ही उन्हे वेध देता हूँ। तुमने कहा था न कि मैं शब्दवेधी बाण कैसे चलाता हूँ, सो आज दिखाऊँगा।"

"यह तो आपने अच्छी याद दिलाई।" रानी बोली—"लेकिन व्यर्थ मे मेरी तनिक-सी इच्छा के कारण किसी के प्राण जाएँ, यह मै ठीक नही समझती। फिर किसी दिन देखूंगी।"

"फिर किसी दिन क्यो ?" गुणधर ने कहा—"क्षत्रिय-कन्या होकर भी तुम हिंसा से इतनी घबराती हो ? आखिर तो तुम युद्धवीर और पराक्रमी राजा मारिदत्त की बहिन हो। आज ही देखो।"

रानी स्वभावत ही अहिंसक थी। वह मास भी नही खाती थी। लेकिन अपने पति की इच्छा का विरोध भी वह स्पष्ट शब्दो दृढता से नही कर सकती थी। अत. युक्ति से हिंसा को रोकने के विचार से बोली—

"स्वामी ! इन वृक्षो पर बहुतेरे पक्षी बैठे है। इनकी आवाज पर यदि किसी को वेधेगे तो मैं शब्दवेध नही मानूंगी। क्योकि ये सब तो हमे बैठे दीख रहे है। इसी उद्यान मे बहुत दूर की आवाज सुनकर यदि आप किसी अनदेखे पशु-पक्षी का वेध करेंगे, तब मानूंगी।"

"हाँ यही सही।" राजा गुणधर बोला—"यह उद्यान कितना लम्बा-चौड़ा है। जब दूर से कोई आवाज आयेगी, तभी आवाज के साथ मैं लक्ष्यवेध करूँगा।"

रानी निश्चिन्त हो गई। उसे आशा थी कि आज पति द्वारा कोई हिंसा नही होगी। एक टीले पर बैठा रहा था, पर वह दिखाई भी दे रहा था।

इसी तरह अन्यान्य प्रसगो पर राजा गुणधर और रानी कुसुमावली मे बाते हो रही थी। मौसम बडा अच्छा था। वातावरण भी बड़ा ही शान्त और मनोरम था। उद्यान की हरित-शोभा भी मन को मोह लेती थी। साथ ही राजा गुणधर अपना नगररक्षक की प्रतीक्षा भी कर रहा था कि वह मेरे मन-मनभावन श्वेतधवल कुक्कुट-युगल को लाये तो मै उनका युद्ध देखूं। वे यहाँ के वन कुक्कुटो को ही यो पछाड देंगे।

१३

वालमुनि अभयरुचि बैठे राजपुर के राजा मारिदत्त को अपनी भवयात्रा सुना रहे थे, और बालश्रमणी अभयमती, अन्य श्रमणियाँ, कुछ धर्म-जिज्ञासु तथा नागरिक एव मदिर के पड-पुजारी सभी दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। मुनि द्वारा वर्णित पूर्वभवो की करुण-कथा सवके हृदय को उद्वेलित कर रही थी जिसे सुन-सुनकर शूरवीर और कौलमतानुयायी राजा मारिदत्त हिंसा के परिणाम से अत्यन्त भयभीत हो उठा था। उसके साथ उसके मत्री आदि थे, वे भी इस भवयात्रा-कथा को वडे ध्यान से सुन रहे थे। कौलाचार्य भैरवानन्द भी वडी उत्सुकता और आश्चर्य से मुनि अभयरुचि की बाते सुनकर गद्गद हो रहे थे।

मास-मदिरासेवी कौल चुपचाप बैठे थे। चण्डमारी देवी की प्रतिमा के सम्मुख पशु पक्षियो के जो लाखो जोडे मारिदत्त ने कौलाचार्य भैरवानन्द के कहने से एक वडे वाडे मे इकट्ठे किये थे, वे अव जैसे इस निर्णय की प्रतीक्षा मे थे कि हमारी मुक्ति होगी या मृत्यु। वीच-वीच मे नि.श्वास छोडते हुए राजा मारिदत्त मुनि अभयरुचि से प्रश्न पूछता जाता था। लेकिन कम ही पूछता था, क्योकि वह इतना डूवकर सुन रहा था कि कुछ [illegible] का अवसर ही नही पाता था। जव मुनि अभयरुचि [illegible] लिया तो मारिदत्त राजा ने उनसे पूछा—

"हे वन्दनीय ! फिर आगे क्या हुआ ? मुर्गे की योनि से आप दोनों की मुक्ति कैसे हुई ?"

मुनि अभयरुचि बोले—

"राजन मारिदत्त ! अब तो थोड़ी-सी ही कहानी शेष है। मुर्गे का जन्म हमारा तिर्यंच योनि का अन्तिम जन्म था। उसके बाद तो हम मनुष्य बने और मनुष्य बनकर तुम्हारे सामने बैठे है।

"राजन् ! सात जन्मों मे मुझ यशोधर राजा और मेरी माता चन्द्रमती ने जो-जो यातनाएँ-पीड़ाएँ भोगी, उनका स्मरण करके आज भी कँपकँपी आती है। अब तुम आगे सुनो।"

गुणधर का नगररक्षक श्वेत-धवल दोनो मुर्गों, यानी हमें लेकर उद्यान पहुँचा। उद्यान मे जब वह प्रविष्ट हुआ तो अशोक वृक्ष के नीचे बैठे उसे एक निर्ग्रन्थ मुनि ध्यानस्थ मिले। उन्हें देखते ही वह क्षत्रिय नगररक्षक क्रुद्ध हो उठा और मन-ही-मन कहने लगा—'आज यह मुण्डित मस्तक अपशकुनी कहाँ से आ टपका। सफेद चादर ओढे और मुँह पर सफेद ही पट्टी बाँधे यह बगुले की तरह आँखें बन्द किये बैठा है, आज मैं इसे खदेड़कर बाहर निकालूंगा। लेकिन निकालूंगा किसी बहाने से ही। पहले तो झूठ-मूठ को इसकी वन्दना करूँगा। फिर इसके धर्म की धज्जियाँ उड़ाऊँगा। आज इससे खूब तर्क-वितर्क कर इसे नाको चने चबवाऊँगा। जब यह निरुत्तर हो जायेगा तो धकियाकर बाहर कर दूँगा।'

यह सोच वह नगररक्षक हम दोनो मुर्गों को गोद में लिए ही मुनि के निकट पहुँचा और हमें नीचे रख उनकी व्यङ्ग-

वन्दना की। तभी मुनि का ध्यान पूरा हुआ तो उन्होने आँखे खोली और नगररक्षक को आशीर्वाद दिया—

"वत्स ! दया पालो, धर्म लाभ करो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम आत्म-सुख के भागी बनो।"

ये मुनि अवधिज्ञानी थे। वे यह जानते थे कि इस नगररक्षक ने मेरी कपट-वन्दना की है और यह मुझसे उलझने आया है। पर वे तो सन्त थे, इसलिए उनके मन में सबके प्रति दयाभाव की निर्मल धारा बह रही थी।

नगररक्षक ने अपने कपट को छिपाते हुए एक जिज्ञासु के रूप मे कहा—

"हे मुने ! मेरे धर्म का लाभ तो मुझे होता ही रहता है। आपके धर्म से तो मेरा शरीर भी आपकी तरह कृश हो जायगा।"

मुनि बोले—

"भद्र ! तुम्हारा धर्म और मेरा धर्म कहकर तुम धर्म के दो भेद नही कर सकते। क्योकि धर्म तो एक ही है, दो नही। एक के अतिरिक्त जो कुछ है, वह धर्म के नाम पर अधर्म है।"

"तो वह धर्म है क्या, जो एक ही है ?" नगररक्षक ने पूछा।

मुनि बोले—

"जो मानवमात्र का—प्राणिमात्र का कल्याण करे। जिसके धारण करने से मनुष्य अपना परलोक बना ले, **वही धर्म है**। अहिंसाधर्म ही धर्म है, जिसको दयाधर्म भी कहते व
दया रहित तो कोई भी विचार, क्रिया और ...
नहीं सकता।"

अब तो नगररक्षक जमकर बैठ गया और पूरी तरह तर्क करने पर उद्यत हो गया। लेकिन उसकी वाणी मे विनम्रता भी थी। यद्यपि यह विनम्रता कपट की थी, पर थी अवश्य। नगररक्षक ने मुनि से कहा—

"पूज्य मुने! क्षत्रिय के शासन मे तो धनुष ही धर्म है। उसमे जो प्रत्यचा बँधी होती है, वही उसका गुण है। युद्धवीर राजा जब धनुष पर चढाकर वाण छोडता है, वही उसकी मुक्ति है। इसके अलावा कही भी धर्म या मोक्ष है, मैंने नही सुना।

'मुने! अब तुम अपनी ओर अपने धर्म की ओर देखो जिस धर्म को तुम धारण किये हुए हो, उसने तुम्हे कितना कृश बना दिया है। तुम्हारा शरीर पसीने से दुर्गन्धित है। इसे धोते क्यो नही? तुम कभी सोते तक नही। उपवास रखकर भूखे मरते हो। तुम लोगो मे भ्रम फैलाते हो। तुम्हारे धर्माचरण मे कौन-सा सुख है? मैं पाँचो इन्द्रियो से सुख लेता हूँ। मास खाकर अपना शरीर पुष्ट बना लिया है। मुझे अपने धर्म को सम... कि वह आखिर है क्या बला।"

नगररक्षक की सब बाते मुनिश्री ने सुनी। वे कृशकाय मुनि कैसे थे, मैं यह बताता हूँ। हे राजा मारिदत्त! वे मुनि इहलोक और परलोक की आशाओ के बधन से मुक्त थे। उन्हे स्वर्ग की भी अभिलाषा नही थी। क्यो नही थी स्वर्ग की इच्छा? क्योंकि 'स्वल्प स्वर्ग अतहु दुखदाई'। उन्होने मन, काय और वचन—इन तीनो को वश मे कर लिया था तथा तीनो की क्रियाओ का निरोध कर लिया था।

राजन् मारिदत्त! जिन मुनि से नगररक्षक ने प्रश्न किया था, उनके सामने देवता भी झुकते थे, क्योकि उन्होने स्वर्गलोक

का स्वामित्व प्राप्त कर लिया था। वे अहिंसा, अचौर्य, अमृपा, अव्यभिचार और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतो के भार को वहन करने मे बलवान बन चुके थे। उन्होने काम जैसे दुर्जय-अजेय शत्रु को जीत लिया था। ऐसे वे मुनि नगररक्षक के अज्ञान को दूर करना चाहते थे। अतः नगररक्षक के प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होने कहा—

"हे भद्र ! मैं रात-दिन न सोकर निर्मल आत्म-ध्यान लगाता हूँ। ध्यान लगाकर मैं जीव और कर्म इन दो का विभाजन करता हूँ। जीव कर्म से अलग हो जायें और उसे अजर-अमर मोक्ष की प्राप्ति हो, इसकी इच्छा से मै तप करता हूँ। यह जीव पुरुष भी बनता है और स्त्री भी। यही शान्त स्वभाव का बनता है और यही क्रोधी भी। जीव ही मत्स्य, सर्प, कुक्कुट, हरिण और सिंह आदि बनता है। रूपवान, नीच गोत्र, उच्च गोत्र, निर्बल और बली—यह इस जीव की ही परिणतियाँ है। यह जीव मांसा-हारी भी है और शाकाहारी भी। इस तरह नाना जन्मो मे होकर जीव की यात्रा चलती है और यह जीव जन्म-मरण के महाकष्ट भोगता रहता है।

"हे भद्र ! इन कष्टो का कारण पाप ही है। मैं पापो को ही दुःखो का कारण मानता हूँ और जानता भी हूँ। इसीलिए इन्द्रियसुखों को त्यागे हुए हूँ।"

नगररक्षक बोला—

"मुने ! तुम्हारी ये बातें बहकाने वाली है। जीव कर्म का चक्कर तो मनगढन्त है। मैं तो जो प्रत्यक्ष देखता हूं, वही मानूँगा। जीव और कर्म दो कैसे हुए ?"

मुनि बोले—

"भद्र ! यह जो हमारा शरीर है, यह जीव से भिन्न है। अतः देह और देही अलग-अलग है।"

इसी तरह मुनिश्री ने शरीर और आत्मा अर्थात् देह और देही का अन्तर बड़े विस्तार से नगररक्षक को समझाया। नगर-रक्षक निरुत्तर हो गया और समझ भी गया। पर उसके स्वभाव की दुष्टता क्या सहज ही चली जाती ? सो उसने एक और प्रश्न पूछा—

"मांस खाने से नरक मिलता है और आत्म-सुख की हानि होती है। यह भी अटपटी बात है। मैं इसे कैसे मान लूँ ? हम लोग देवी के सम्मुख पशुओं की बलि देते हैं। इससे देवी प्रसन्न होकर हमें सुख-शान्ति देती है। यदि हम पशुओं की बलि न दें तो देवता कैसे प्रसन्न प्रसन्न होंगे, धर्म कैसे चलेगा ? जब धर्म चलाना ही है तो इन मरे हुए पशुओं को खाना ही पड़ता है।"

मुनि बोले—

"जिसे तुम धर्म कहते हो, वह घोर अधर्म है। हिंसा कभी धर्म हो ही नहीं सकती। रही बात देवी के प्रसन्न होने की, सो यह भी असंभव है। देवी-देवता कभी अपने भक्त के प्राण लेना नहीं चाहते। फिर वे मांस जैसी अपवित्र व घृणित वस्तु का भोग लेना कभी पसंद नहीं करते। प्राण लेने वाला देव प्राणदान कैसे करेगा ? हिंसा, क्रूरता का फल सदा ही क्रूर व कटु ही होता है।"

मुनि का कथन सुनकर नगररक्षक सिहर उठा। कांपने लगा वह। उसका सब कपट उसी तरह जाता रहा, जैसे सूर्योदय से अँधेरा चला जाता है। अब सच्चे जिज्ञासु के भाव से नगररक्षक ने मुनिश्री से कहा—

"पूज्य मुने ! अव मुझे वह धर्म बताइए, जिसे पालकर मैं अपना कल्याण कर सकूँ। मैं अव तक भ्रम मे था। अव तो आप जो कहेगे, वही करूँगा।"

मुनिश्री ने नगररक्षक को धर्म समझाया। वे बोले—

"जो बीत गयी सो बीत गयी। अव आगे की सम्हालो। तुम धर्म को धारण करो, क्योकि धर्म से ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते है। धर्म से ही तो मानव जिनेन्द्र बनता है, जिसके चरण-कमलो पर इन्द्र भी झुकते है। धर्म से ही नरेन्द्र, सुरेन्द्र और फणीन्द्र बनते है। धर्म से गृहस्थ-जीवन बडा ही सुखमय बन जाता है। यदि अन-गार यानी श्रमण महाव्रतो का पालन करते है तो सागार—यानी गृहस्थ श्रावक अणुव्रतो का पालन करते है। अतः मोटे रूप से धर्म के दो भाग होगए—एक चारित्रधर्म और दूसरा श्रावकधर्म।

"हे भद्र ! तुम गृह त्याग कर यदि मेरी तरह चारित्र का पालन नही कर सकते तो श्रावकव्रतो को धारण करो जो बहुत सरल भी है। अचौर्य, सत्य, दया, अहिंसा आदि का पालन करके अपने जीवन को सफल करो।"

इतना कहने के साथ ही मुनिश्री ने नगररक्षक को एक-एक करके बारहो श्रावकव्रत समझाये। उनका महत्व बताया और उनके पालन की व्यावहारिक विधि भी। सब कुछ सुनने-समझने के बाद नगररक्षक ने कहा—

"पूज्य मुने ! आज मेरे पुण्यो के उदय का दिन था, जो आपके दर्शन हुए और आपकी कल्याणकारी देशना सुनने को मिली। मैं आपके बताये धर्म का पालन करूँगा—अवश्य करूँगा; पर अहिंसा का पालन करना मेरे लिए कठिन है। क्योकि मेरा कार्य ही ऐसा है कि मैं हिंसा को नही छोड सकता। मैं उग्र-

यिनी का नगररक्षक हूँ। चोरो का पीछा करते-करते मैं पकड़ने उन्हे मौत के घाट उतार देता हूँ। मेरे ही आदेश से मेरे अधीन आरक्षी जवान भी प्राणदण्ड देते है। अत. हे मुने! अहिंसा को छोडकर मै सभी बाते मानूँगा।"

नगररक्षक की यह बात सुन मुनि मेघ सी गम्भीर वाणी मे बोले—

"अहिंसा को छोड़कर तुम धर्म की अन्य बातो का पालन करो। पर करोगे कैसे? यदि कोई कहे कि मैं कंठ तक पानी मे घुसने को तो तैयार हूँ, पर भीगने को तैयार नही हूँ, या सात मंजिल का भवन तो खडा करूँगा, किन्तु नीव नही डालूँगा तो यह कैसे सभव होगा? ऐसा ही तुम्हारा कथन है कि मैं धर्म के सब नियमों को मानूँगा, पर अहिंसा को नही।

"भद्र! कोई कहे कि मैं आम्र वृक्ष को जड से खोद डालूँ पर वृक्ष को भरा-भरा रखूँगा तथा उसके फल मौसम में खाऊँगा, तो क्या सम्भव है? अरे भोले! अहिंसा तो धर्म की जड है। शेष तो सब शाखाएँ है। जैसे जड के बिना वृक्ष नहीं वैसे ही अहिंसा के बिना धर्म नही। जो धर्म के चार नियमों का पालन करेगा, उससे अहिंसा का पालन तो स्वत ही हो जायगा

"नगररक्षक! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँचो मे से यदि कोई अहिंसा को छोडकर शेष चारों का पालन करेगा तो अहिंसा का पालन अपने आप हो जायगा क्योंकि अहिंसा मूल है और शेष चारो इसकी शाखाएं। यदि कोई अहिंसा को छोडकर इन चारों का पालन करना चाहे तो हो नही सकता! असंभव है।

"भद्र! असत्य बोलने मे दूसरो को पीडा होती है। चोरी करने मे भी दूसरो को पीडा होती है। अतः यदि तुम दूस

त्याग करके सत्य बोलोगे और अचौर्य को अपनाओगे तो अहिंसा का पालन हो गया। क्योंकि पीडा देना ही हिंसा है।

"नगररक्षक ! अब तुम हिंसा का परिणाम भी अपनी आँखो से यही बैठे-बैठे देख लो। ये जो तुम्हारे पास श्वेत-धवल दो मुर्गे है, जानते हो ये कौन है ? मै बताता हूँ। इनमे से एक मे महाराज यशोधर का जीव है और दूसरे मे उनकी माता चन्द्रमती का जीव है। यशोधर राजा ने किसी जीव की हिंसा नही की थी, केवल कृत्रिम मुर्गे का—आटे के बने मुर्गे का वध किया था और इस भावहिंसा की प्रेरणा इनकी माता चन्द्रमती ने दी थी। इस नगण्य-सी तुच्छ हिंसा का परिणाम यह हुआ कि ये छह जन्मों तक तिर्यंच योनि मे भटके। हर योनि मे इन्होने महाकष्ट पाकर पीडाप्रद मृत्यु पाई।

"हे भद्र ! यशोधर राजा अपना मनुष्य-शरीर छोडने के बाद क्रमशः मोर, नेवला, मत्स्य, बकरा, पुन बकरा और अब मुर्गा बना। हिंसा के नीच कर्म ने ही राजमाता चन्द्रमती को कुत्ता, सर्प, मकर, बकरी, भैंसा बनाया और अब मुर्गा बनी।

"भद्र ! तुम पूछोगे कि इसका क्या प्रमाण है कि इन दोनो मुर्गों मे नृप यशोधर और राजमाता चन्द्रमती का ही जीव है। तो सुनो, मैं आगे की बात बताकर अपने कथन के सत्य की प्रामाणिकता सिद्ध करता हूँ। तुम देखोगे कि कुछ ही पलो मे ये दोनो अपने ही पुत्र और मालवेश्वर गुणधर के बाण से मरने वाले है।"

यह कह मुनिश्री मौन हो गये।

हे राजन् मारिदत्त ! अपनी मृत्यु की बात सुनकर भीत हो गये। पर हमने मुनि की देशना सुनी थी

की शरण ले ली। हमें जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया। हमने संथारा किया। मन-ही-मन सबसे क्षमा मांगी और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे।

राजन् मारिदत्त! हमने जोर-जोर की आवाज में बोलना शुरू किया। बोलते रहे। नगररक्षक हमारी ओर देख रहा था और सोच रहा था, 'भला इन्हें गुणधर राजा क्यों मारेंगे? भले ही उन्हें यह पता नही है कि ये उनके पिता तथा पितामही हैं, तो भी इन मुर्गों को तो ये बहुत चाहते हैं। उन्होंने ही तो मुझे कहा था कि इन्हें लेकर उद्यान आना, हम चलते हैं। मैं इन्हें लेकर उन्ही के पास ......।'

बस, नगररक्षक आगे कुछ नही सोच पाया कि चमत्कार हो गया। राजा गुणधर अपनी प्रिया कुसुमावली के साथ वनरस में निमग्न था कि तभी उसने हमारी आवाज सुनी तो धनुष पर बाण चढ़ाकर अपनी रानी से बोला—"यह देखो, मेरे शब्दवेध का कमाल।" यह कह उसने बाण छोड दिया और उस बाण ने हम दोनो को वेध डाला।

नगररक्षक हमारे शवो को लेकर गुणधर राजा के पास पहुंचा और हमारे छहो जन्मो का यात्रा वृत्तान्त, जो मुनि से सुना था, सो उसे सुनाया। सब सुनने के बाद राजा गुणधर बिलख-बिलख कर रोने लगा। वह बार-बार पछताकर कहने लगा—

"हाय! मैंने बकरे के रूप मे अपने पिता का ही मांस खाया। मैंने अपनी पितामही चन्द्रमती को भैंसे के रूप मे बड़ी बेदर्दी से मारा था। मेरा दान-पुण्य उनके किसी काम नहीं आया।"

फिर गुणधर ने विधि-विधान से हमारा दाह सस्कार किया। हमारी तिर्यंच भवों की यात्रा यहाँ समाप्त होगई। इस जन्म मे हमने भावना से धर्म की शरण ली थी। मुनि की वाणी सुनी थी, सो मरकर हमने मनुष्य भव प्राप्त किया। वरना तो आटे के मुर्गे की हिंसा का पाप जाने कितने जन्मो तक हमे पशु-पक्षी ही बनाता रहता।

राजन् मारिदत्त! हम अपने लक्ष्य के निकट बढते जा रहे थे। जीव की यात्रा अनन्त है। पिछली यात्रा की तो हमे याद ही नही। यशोधर राजा के जन्म से लेकर मोर, नेवला, मुर्गा आदि सात जन्मो की यात्रा मैंने तुम्हे सुना दी। इसी क्रम मे यह भी बता दूँ कि मेरी पटरानी नयनावली जो कुबड़े मे आसक्त थी, उसे कोढ तो तभी फूट गया था, जब मैं पाँचवें जन्म मे बकरा था। उसके बाद तो उन दोनो की ही—कुबडा तथा नयनावली की बहुत बुरी दशा हुई। उन्होने मनुष्य जन्म मे ही नरक भोगा। वे दोनो गल-सडकर मरे और मरकर नरक मे गये।

इतना सुनने के बाद राजा मारिदत्त ने एक गहरा निःश्वास छोड़ा और कहा—

"अभयरुचि के रूप मे आपका और अभयमती के रूप में राजमाता चन्द्रमती का यह आठवाँ जन्म है। इस जन्म मे आपको पूर्वभवो की स्मृति कैसे हुई और इस बाल्यावस्था मे ही राज-पाट कैसे त्यागा, सो सब कहिए। मेरे बहनोई गुणधर भी तो राजर्षि बन गये। बहन कुसुमावली भी साध्वी बन गई। मैं **उन सबके** दर्शन करके अपने जीवन को धन्य करूँगा। आप इस **आठवें भव** की कथा भी सुना दीजिए।"

इतना सुन मुनि अभयरुचि राजा मारिदत्त .। भव-यात्रा पुन सुनाने लगे।

१४

मेरी पुत्रवधू, अर्थात् राजा गुणधर की पत्नी कुसुमावली गर्भवती हुई। मैं और मेरी माता चन्द्रमती—का जीव दोनो ही उसके गर्भ मे स्थित हुए। कर्मों की यह कैसी विडम्बना थी कि मैं राजा यशोधर अपनी ही पुत्रवधू कुसुमावली के रुधिर से पल रहा था और मेरी माता अपनी पौत्रवधू के गर्भ मे वढ रही थी।

राजन् मारिदत्त ! जब हम माता-पुत्र रानी कुसुमावली के गर्भ में आये तो उसे बडे शुभ दोहद उत्पन्न हुए। उसने अपने पति गुणधर का आखेट सर्वथा छुड़वा दिया। वह स्वयं भी अब धर्म में अधिक रुचि लेने लगी। इसी तरह नौ महीने बीते तो कुसुमावली रानी ने दो जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया। इस तरह मैं ही पुत्र का पुत्र बना और मेरी माता चन्द्रमती अपने ही त्र की पुत्री बनी। पूर्वभव मे हम जो माता-पुत्र थे, अब बहन-भाई बन गये—सहोदर बहन-भाई। रिश्ते-नातों का यह संसार कितना झूठा है।

फिर हमारा नामकरण संस्कार हुआ। मेरा नाम अभयरुचि रखा गया और मेरे पूर्वभव की माता इस बहन का नाम अभयमती रखा गया। हम दोनों गुणधर राजा और रानी कुसुमावली को बहुत प्यारे थे। मेरी मुखाकृति देखकर गुणधर कहा करता था कि देखो मेरे पुत्र अभयरुचि की अनुहार तो पिता यशोधर जैसी ही है। मानो मेरे पिता यशोधर ही पुत्र बनकर मेरे घर में आये

हो। इसी तरह अभयमती की शक्ल-सूरत भी गुणधर की पितामही, यानी मेरी माता चन्द्रमती से बहुत मिलती-जुलती थी।

बात तो सच ही थी, पर इस रहस्य को जानता कोई नही था कि हम दोनो शक्ल-सूरत की समानता मे ही नही आत्मा से भी यशोधर और चन्द्रमती है। अज्ञान ऐसा ही होता है। मुझे भी तो अपना पूर्वभव याद नही था। अभयमती को भी याद नही था। यदि याद होता तो मैं क्या अपने ही पुत्र गुणधर को पिता कहता ? क्या अभयमती भी अपने पौत्र को पिता मानती। संभवतः इसीलिए जीव अपने पूर्वभवो को भूल जाता है।

राजन् मारिदत्त ! अव बात को लम्बा क्या करूँ, मैं युवराज पद पर बैठने के योग्य हो गया। इस अभिषेक उत्सव में मेरे पुत्र और अब पिता—को मास-भोज देने की सनक सवार हुई। उसका मृगया व्यसन पुन जागृत हो गया। अत वह पाँच सौ शिकारी कुत्तो को लेकर वन मे पहुँचा। वहाँ उसे एक वृक्ष के नीचे बैठे मुनि सुदत्त मिल मिल गये। मुनि-द्वेपी मेरे पुत्र गुणधर ने मुनि पर अपने शिकारी कुत्ते छोड दिये। पर प्रकाश के सामने अँधेरा कहाँ ठहरता है ? ऐसे ही अहिंसा के सामने हिंसा भी नही टिकती। पर हो अहिंसा ही। कायरता या दब्बूपन अहिंसा कदापि नही हो सकती। अहिंसा तो वीर का गुण है।

तो गुणधर के शिकारी कुत्ते मुनि के सामने पूँछ हिलाने लगे। इस प्रयास को विफल देख गुणधर स्वय खड्ग लेकर मुनि सुदत्त के ऊपर झपटा। तभी एक श्रावक वहाँ आगया। उसने जब मुनि की क्षमताओ और लब्धियो का परिचय दिया तो गुणधर आश्चर्यसागर मे डूब गया। फिर तो वह मुनि का हो गया। मुनि ने भी उसे धर्म सुनाया।

कर्म की लीला सुनने के बाद गुणधर ने मुनि

मोक्षार्थी उज्जयिनी के वन मे रहे। फिर मुनिश्री सुदत्त के साथ विहार किया। मैं गुणधर का पिता यशोधर और इस जन्म मे उसका पुत्र अभयरुचि मालवेश्वर था। गुणधर भी मालवेश्वर था और मुनि सुदत्त भी कलिग के राजा थे। तीनो के लिए राज्य दुःखदायी था।

राजन्! राज्य तो किसी के साथ जाता नही। राजा बने रहने पर जो दुष्कर्म किये जाते है, वे साथ जाते हैं। राजा चोर को दण्ड देता है, देना पडता है। अनिवार्य होने पर युद्ध भी करना पडता है। राजा के ये सब क्रिया-कलाप कर्मबंधकारक है। मुझे एक राजा की कहानी याद आती है।

एक राजा था। बडा ही प्रतापी और बडा ही युद्धकर्मी। चारो ओर उसके नाम का डका बजता था। उसके नाम से ही शत्रु काँपते थे। उसने अपने राज्य, कोष और सेना को काफी बढा लिया था। एक दिन वह लडाकू राजा अपनी सभा मे बैठा था। तब उसकी सभा मे एक संन्यासी आये। ये वैदिक सन्यासी थे और गैरिक वस्त्र पहने थे।

राजा उस समय युद्ध मत्रणा करना चाहता था, सो वह साधु को टालना चाहता था। उसने एक उपाय सोचा कि साधु की अवमानना भी न हो और मेरे मत्रणा कार्य मे बाधा भी न पडे। यह सोच उस राजा ने साधु से कहा—

"महाराज! मेरी यह हीरे की अँगूठी रख लो। आप तो भ्रमण करते ही रहते हैं। किसी मूर्ख को यह दे देना। लेकिन देना उसी को जो सबसे बडा मूर्ख हो और फिर कभी इधर आयें तो उस मूर्ख को साथ लेते आयें। मैं भी देख लूंगा कि महामूर्ख कैसे होते है।"

और काहे का ? मेरा मतलब है कि तुमने खजाना, सेना और दास-दासी वहाँ भेज ही दिये होगे ? खाने-पीने की कुछ चीजे भी भेज दी होगी। भई, तुम तो राजा हो। परलोक मे तुम्हें कोई कष्ट न हो, इसलिए सब कुछ भेज दो।"

राजा ने कहा—

"ये सब वहाँ कैसे भेजता ? मैंने तो कुछ नही भेजा। आप तो बडी बेतुकी बाते कर रहे है। ये सब क्या परलोक मे कोई भेजता है, जो मै ही भेज देता ?"

साधु पूर्व की तरह ही गम्भीर थे। वे बोले—

"अच्छा जाने दो। ये सब चीजे तो वहाँ मिल भी जायेगी। पर सुई नही मिलती। एक सुई तुम अपने साथ ही लेते जाना।"

राजा झुंझला गया। बोला वह—

"आप कहाँ की बाते ले बैठे ? मेरा शरीर तो क्या, शरीर का एक रोम तक मेरे साथ नही जा सकता। आप कहते है कि सुई तो लेते ही जाना।"

अब साधु ने अपनी झोली मे हाथ डाला और पाँच वर्ष पहले राजा की दी हुई हीरे की अँगूठी उसी को लौटाते हुए कहा—

"राजन् ! लो, इसे रख लो। पाँच वर्ष मे खूब घूमा। पर मुझे तुमसे बडा मूर्ख कोई नही मिला। सबसे बडे मूर्ख तो तुम्ही हो, जो कुछ नही ले जा रहे। जब यह जानते थे कि राज्य, खजाना, सेना और तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु हमारे साथ नही जायगी तो यह आपा-धापी, खून-खराबी, छीना-झपटी किसके लिए करते रहे ? तुम मूर्खों के सरताज हो।"

यह कहकर साधु उठ गये। राजा उन्हें देखता रहा और तीन हिचकी लेकर प्राण छोड दिये।

राजन् मारिदत्त! तुम यौधेश देश के राजा हो। वीर और प्रतापी भी हो। पर जिसने अपने भीतर के काम-क्रोध, मान-मोह-रूपी शत्रुओ पर विजय नहीं पाई वह कैसा वीर है? तुम इन बेजुबान पशुओ का वध करके अपनी वीरता दिखाना चाहते हो, सो पहले इसका कटु परिणाम सोच लो।

आज सयोग से ही गुरुदेव सुदत्त, जो कभी कलिंग के राजा थे, विहार करते हुए इधर आ निकले। मेरे पूर्वभव के पुत्र और इस जन्म के पिता राजर्षि गुणधर भी यहाँ राजपुर के श्मशान में ठहरे है। गुरु आज्ञा से मैं और श्रमणी अभयमती आदि भिक्षा लेने तुम्हारे नगर मे आये तो तुम्हारे सैनिको ने हमे पकड लिया और यहाँ ले आये। अब तुम हमारा वध करके अपनी इच्छा पूरी करना चाहते हो तो हम प्रस्तुत है। हिंसा का परिणाम मैंने तुम्हे अपना भोगा हुआ सुना दिया।

बालमुनि अभयरुचि की बात समाप्त हुई तो राजा मारिदत्त, उनके चरणों में गिर पडा और बिलख-बिलखकर रोने लगा। रोते-रोते उसने कहा—

"भन्ते! मैं परम भाग्यशाली हूँ जो आज आप कृपावतार आ गये। मुझे अपनी शरण मे लीजिए, मुझे उबारिए!"

इसके बाद राजा मारिदत्त ने अपने सेवकों को आज्ञा दी—

"अरे मूर्खो! देखते क्या हो? इन पशु-पक्षियों को छोड दो। क्या अब भी कुछ जानना शेष है? जंगल के पशुओं को जंगल मे छोड आओ और जल जीवों को जल मे डाल आओ। अब इन कौलो को मैं देखूँगा।"

फिर तो वे लाखो जोडे-जो पशु-पक्षी चण्डमारी के समक्ष मारने के लिये एकत्र किये गये थे, वे सब छोड दिये गये। पख फरफराते पक्षी आकाश मे उडते जैसे अपनी जीवन रक्षा पर हर्ष-रव करते थे, और जीवनदायी मुनि के असीम उपकार के प्रति कृतज्ञ हो रहे थे। चण्डमारी देवी का रुधिर, मास, हड्डियो और चर्बी से पूरित जो मन्दिर था, उसकी सफाई होने लगी। धो-पोंछकर सब साफ किया। वहाँ घी के दिये जलाये गये। अगरु-धूप की सुगन्ध से वह मन्दिर सुगन्धित हो उठा। तभी चण्डिमारी देवी वहाँ प्रकट हुई। उसका रूप असाधारण सुन्दर था। ऐसा कि उसका वर्णन नही किया जा सकता।

चण्डमारी देवी की प्रतिमा मे जो विकरालता, भयानकता और वीभत्सता थी, उसका यहाँ लेश भी नही था। देवी के कंठ मे हीरक हार पडा था। उसके श्याम केश नितम्बो तक छिटके हुए थे। उसके एक हाथ में स्वर्ण पात्र था और दूसरे मे पुष्प। देवी ने पात्र के जल से मुनि अभयरुचि के पैर पखारे और उन पर मस्तक झुकाकर वन्दना कर बोली—

"हे श्रमणवर ! आप धर्म के साक्षात् रूप है। आज मै धन्य हो गई। मेरे नाम पर इन लोगो ने नाना जीवो का वध करके मुझे भी पापिनी बनाया। मैने इन्हें रोका नही, यह मेरी बड़ी भारी भूल व अज्ञान था। यद्यपि इनकी रक्त-मास की भेंट मेरे लिए सर्वथा अयाचित रही। पर मैने इन्हे कभी रोका नही, इससे इनका यह दुर्विश्वास बल पकडता गया कि बलि से मै प्रसन्न होती हूं।

"हे मुने ! मैं अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहती हूँ। अत. आप मुझे श्रामणी दीक्षा दीजिए। क्योकि आटे के मुर्गे की

हिंसा से आप यशोधर राजा तिर्यंच योनियों मे भटके। इस आठवें जन्म मे जब आपने मनुष्य योनि पाई तो अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चारित्र ग्रहण किया। वस्तुतः सही अर्थों मे तो यही आपकी यात्रा है। लक्ष्य को जाने बिना चलना, यात्रा न होकर मात्र भटकना ही है। अतः मुझे भी लक्ष्य तक पहुँचा दीजिए।"

देवी का कथन सुनकर मुनि अभयरुचि ने कहा—

'देवी ! देवी-देवो के लिये तप का विधान नही है। तुम्हारी क्या चार प्रकार के जो देवी देव है, वे कोई कभी चारित्र के अधिकारी नही है। तप का विधान तो मात्र मनुष्य भव मे ही है। तुम तो मात्र भावना से ही धर्मपालन कर सकती हो।"

इसके बाद बालमुनि अभयरुचि ने देवी को विस्तार से धर्म सुनाया और देवभव क्यो मिलता है तथा इनकी आयु कितनी होती है, यह सब बताया। सब कुछ जानने-समझने के बाद चण्डमारी देवी ने सम्यक्त्व ग्रहण किया और मुनि अभय-रुचि तथा साध्वी अभयमती आदि श्रमणियो को वन्दना करके कहा—

"अब मेरी एक इच्छा है कि आप कोई वरदान मांगकर मुझे कृतार्थ करें।"

इस पर मुनि अभयरुचि ने कहा—

"पर मेरी तो कोई भी इच्छा नही। इच्छा रखने हुए जो साधु बनता है, वह साधु है ही नही। फिर तो वह ससारी है। इच्छा मे कोई सुख नही, दुःख-ही-दुःख है। इसीलिए तो मोक्षा-भिलाषा को छोडकर श्रमण की कोई इच्छा नही होती।

"देवी ! सम्यक्त्व तो देवों और नारकियों को भी प्राप्त

है। कुछ तिर्यंचो मे भी अणुव्रत होते हैं। पर महाव्रतो का पालन करने के लिए तो मात्र मनुष्य का ही भव है। यशोधर के रूप मे तो मैं महाव्रतो को धारण भी नही कर पाया और मर गया। फिर तो मोर, नेवला, मत्स्य, वकरा, कुक्कुट वना और अव यह मनुष्य शरीर पाया तो अपनी यात्रा कैसे स्थगित कर दूं। ये इच्छाएँ ही तो यात्रा की वाधाएँ है। यही लक्ष्य तक नही पहुँचने देती।

"देवानुप्रिये! देवी-देवो के वरदान भी अस्थिर होते हैं। अखण्डानन्द तो मात्र मोक्ष मे ही है। अत: मुझे किसी वरदान की कामना नही है।"

यह सुन देवी धन्य-धन्य, साधु-साधु कहने लगी और वार-वार वन्दन करके अन्तर्धान हो गयी। देवी के चले जाने के वाद राजा मारिदत्त पुन: मुनि अभयरुचि के चरणो मे गिरा और वोला—

"भगवन्! अव मै कैसे वचूँगा? आपने तो कृत्रिम हिंसा ही की थी। पर मैंने तो वडा खून वहाया है। मैंने अगणित जीवो के प्राण हरण किये हैं, कितना निर्दय! कितना क्रूर बना हूँ मैं!

"देव! मैं वहुत भयभीत हूँ। मुझे मेरे पापो से वचा लीजिए। अव तो मैं सर्वभावेन निर्ग्रन्थधर्म की शरण मे हूँ।"

इस पर मुनि अभयरुचि ने कहा—

"राजन्! तुम्हारा कल्याण होगा। आओ चले, तुम्हे धर्म-दीक्षा तो मेरे गुरु मुनि सुदत्त ही देगे। उनकी निर्वेदपूर्ण वाणी से तुम्हारे पापो का प्रक्षालन होगा।"

हर्षित होता हुआ राजा मारिदत्त उठ खड़ा हुआ। वह मुनि

अभयरुचि और साध्वी अभयमती आदि के पीछे-पीछे चल दिया। उसके पीछे-पीछे राज-सचिव, सभासद तथा प्रजा के लोग भी चल रहे थे। मार्ग मे राजा मारिदत्त सोचता जाता था—'मैं ही क्या, देवी चण्डमारी तक इन मुनि की चरणोपासिका बन गई। इस पर भी कोई ऐसे भी है, जो इस मुनि के भी पूज्य और गुरु है। उनके दर्शन से तो मेरा और भी अधिक कल्याण होगा।'

राजा मारिदत्त सहित सब लोग राजर्षि सुदत्त के पास पहुँचे। वही राजर्षि गुणधर तथा साध्वी कुसुमावली आदि भी थे। मुनि सुदत्त तो अवधिज्ञानी और पाप-विनाशक थे। गुरु के समीप पहुँच अभयरुचि ने घुटने टेक उनकी वन्दना की। ऐसा ही मारिदत्त ने भी किया। तदनन्तर संघाचार्य मुनि सुदत्त ने राजा को धर्माशीष दिया—

' तुम्हारी धर्मवृद्धि हो। आत्मकल्याण मे प्रवृत्ति करो !"

मुनि का आशीष प्राप्त कर राजा बैठा तो पूछा—

"प्रभो ! पूर्वभव का कर्म प्रभावित किये बिना नही मानता। ऐसा अब मेरी समझ मे आ गया है। मैं यौधेय देश का राजा हूँ यह भी पूर्वकर्म के कारण ही है। फिर मैं हिंसा मे रुचि लेने लग गया। कौलाचार्य भैरवानन्द ने मुझे भ्रम मे डाला, यह सब पूर्व-भव के किस कर्म के कारण हुआ ?

"प्रभो ! अब तो ये सभी पाखण्डी कौल और कौलाचार्य भैरवानन्द भी आपकी देशना सुनने आये है। आप तो तीनों कालो को जानते है। जैसे आपकी कृपा से मुनि अभयरुचि आदि सभी पूर्वभव जानते है। ऐसे ही मैं भी अपने पूर्वभव जानना चाहता हूँ। मुझ पर अनुग्रह कीजिए।"

राजा मारिदत्त की इच्छा जानकर मुनि सुदत्त ने कहा—

"राजन् ! तुम्हारी जिज्ञासा बहुत उपयुक्त है। पूर्वभव के वैर-प्रीति, घृणा-आकर्षण भी हमे प्रभावित करते है। यशोधर गुणधर के पिता थे, तभी तो वे पूर्व सम्बन्ध के कारण तिर्यंच योनि मे भी गुणधर को अच्छे लगते थे और हर बार वे उनके निकट आ जाते थे। इसी तरह तुम्हारा, कौलाचार्य भैरवानन्द और चण्डमारी देवी का पूर्वभवो मे निकट का सम्बन्ध रहा है। वही सम्बन्ध-विपाक इस जन्म मे काम कर रहा है। जैसे यशोधर राजा के आठो भवो की यात्रा कथा बडी रोचक, सरस और 'आँखें खोलने' वाली है, उसी तरह तुम्हारे भवो की भी है।

"राजन ! तुम अपना और भैरवानन्द आदि का पूर्वभव ध्यान देकर सुनो।"

राजा मारिदत्त के साथ ही भैरवानन्द तथा अन्य सभी श्रोता अवधिज्ञानी मुनि सुदत्त के मुख से अपने पूर्वभवो की उद्बोधक कहानी सुनने लगे।



१५

गन्धर्व नामक एक सुन्दर, समृद्ध और दूर-दूर तक प्रसिद्ध देश है। यहाँ गधर्वगिरि नाम का एक विशाल पर्वत भी है। शायद इसीलिए उस देश का नाम गन्धर्व पडा। इस देश की राजधानी जिस नगर में है, उस नगर का नाम भी गन्धर्वपुर है।

गन्धर्वदेश के राजनगर गन्धर्वपुर की शोभा अवर्णनीय है। वहाँ उद्यान-उपवनो में सुवासी पुष्प खिले रहते है। उन पर गन्ध-हारी भ्रमर मँडराते रहते है। नगर प्रवेश करते ही ऐसी गन्ध आती है कि नगर का गन्धपुर नाम सार्थक-सा लगता है। और और गन्धपुर के श्रेष्ठी-व्यापारियो के पास जो सोना है, उसमे भी सुगन्ध है। ये लोग अपने धन अथवा सोने को सबसे पहले दान मे ही व्यय करते है। इसीलिए सोने मे सुगन्ध की लाक्ष-णिक उक्ति चल पड़ी। धन का सुपात्र मे दान ही सोने की सुगन्ध है।

ऐसे गधर्वपुर नगर मे वैधव्य नाम का राजा राज्य करता था। वह राजा असाधारण था। उसका शरीर मानो त्याग और भोग का साक्षात रूप ही था। वह ऐसा लड़ाकू था मानो शत्रु-दल के विनाश ने ही वैधव्य राजा का रूप धारण किया हो।

ऐसे अति बली, त्यागी, प्रजावत्सल राजा की रानी का नाम विन्ध्यश्री था। विन्ध्यश्री रानी की कोख से उत्पन्न राजा वैधव्य के दो सन्तानें थी। एक राजपुत्र गधर्वसेन और दूसरी राज-

कन्या गंधर्वश्री । ये दोनो बालक देवपुत्र और देवकन्या जैसे सुन्दर है। गंधर्वसेन तो मानो मन्मथ का रूप ही था। गंधर्वश्री भी साक्षात रमा और इन्द्राणी थी।

राजा वैधव्य का जो महामात्य था, उसका नाम राम था। मत्री राम बहुत ही बुद्धिमान, चतुर और राजा को सम्मति देकर उसके शासन को सुशासन बनाने मे कुशल था। उस मन्त्री राम की जो प्रिया थी, उसका नाम चन्द्रलेखा था। मन्त्रिपत्नी चन्द्रलेखा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। एक का नाम जितशत्रु और दूसरे का भीम था। जितशत्रु का छोटा भाई भीम अधम कर्म करने मे निपुण था।

राजकन्या गंधर्वश्री जब विवाह योग्य हुई तो राजा वैधव्य ने उसका स्वयवर रचाया। बडी दूर-दूर के राजा और राजकुमार स्वयवर-मण्डप मे एकत्र हुए। लेकिन गंधर्वश्री मन्त्रिपुत्र जितशत्रु से प्रेम करती थी, सो उसने जितशत्रु के कण्ठ मे ही वरमाला डाल दी।

फिर तो राजकन्या गंधर्वश्री का विवाह मन्त्री राम के ज्येष्ठ पुत्र जितशत्रु के साथ बडी धूमधाम से हुआ। गंधर्वश्री जितशत्रु की पत्नी बनी और राम तथा चन्द्रलेखा की पुत्रवधू। अब मन्त्री राजा वैधव्य का सम्बन्धी भी बन गया। गंधर्वश्री अपने श्वसुर राम के भवन पर डोली मे बैठकर गई। कुछ दिन राग-रग और विवाहोत्तर विधि-विधान मे बीते। फिर तो गन्धर्वश्री अपने पति जितशत्रु के साथ दाम्पत्य सुख भोगते हुए समय बिताने लगी।

सभी जन अपनी-अपनी धुन मे जो रहे थे। पुत्री का विवाह करके राजा वैधव्य अब निश्चिन्त था, सो वह अब आखेट में

अधिक रुचि लेने लगा। एक दिन वह वन मे गया तो एक हिरन को लक्ष्य कर वाण छोड दिया। तत्काल ही उछलती-कूदती हिरनी वहाँ हिरन और राजा के बाण के बीच मे आ गई। हिरन तो बच गया और हिरनी बाण से बिधकर गिर गई। तड़फ-तड़फ कर उसने प्राण छोडे। राजा के शिकारी साथियो ने मृत हिरनी को कन्धो पर रख लिया। अपनी उस मृत-पत्नी को हिरन मोड़ लौटकर देखने लगा और उसकी आँखो से आँसुओ की धार बहने लगी। राजा वैधव्य से हिरन का दुःख नही देखा गया। अपने इस आखेट से उसे मन मे बहुत ग्लानि व संताप हुआ और बार-बार अपने कृत्य को धिक्कारने लगा।

घर आकर राजा वैधव्य ने संसार की निस्सारता पर विचार किया और आत्मोद्धार के लिए श्रामणी दीक्षा ले ली। तब श्रमण मुनि वैधव्य तो राग-द्वेष का शमन करने लगे और इधर उनका पुत्र गंधर्वसेन गधर्वदेश का राजा बना। राजा गधर्वसेन का तेज अपार था। उसके पास विशाल चतुरंगिणी सेना थी। वह न्याय नीति से प्रजापालन करने लगा।

राजा गधर्वसेन की माता विन्ध्यश्री मांसोपवास करती हुई धर्म का आराधन करते हुए अपने जीवन को धन्य करने लगी। कुछ वर्ष ऐसे ही बीते तो राजा गधर्वसेन राजपरिवार सहित अपने पिता मुनि वैधव्य ऋषि के दर्शन करने चल दिया। वे नगर से दूर कही वन मे ठहरे थे।

अकिंचन ही रहा। यदि मेरे तप का कुछ फल हो तो मुझे भी अपने पुत्र राजा गधर्वसेन का-सा वैभव प्राप्त हो।'

इस प्रकार मुनि वैधव्य ने सिद्धि रूप रत्न को त्यागकर सासारिक वैभवरूपी धान की भूसी—निस्सार वैभव का निदान बाँधा। जब मुनि वैधव्य ने प्राण त्यागे तो मरकर उज्जयिनी के राजा यशवन्धुर हुए। यशवन्धुर का पुत्र यशोध हुआ। यशवन्धुर के बाद यशोध उज्जयिनी के राजा सिंहासन पर बैठा। उसके यश से दिशाएँ पूरित हो गई।

मुनि वैधव्य की जो सासारिक नाते से पत्नी थी, वह विन्ध्यश्री व्रत, उपवास तथा धर्माचरण करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुई और मरकर उसने अजिताग राजा के घर कन्या रूप मे जन्म लिया। उसका नाम चन्द्रमती रखा गया। चन्द्रमती का विवाह उज्जयिनी के राजा यशोध के साथ हुआ।

रानी चन्द्रमती की कोख से यशोध का जो पुत्र हुआ, उसका नाम यशोधर रखा गया। जब यशोधर समर्थ हो गया तो राजा यशोध ने उसे राजा बनाया और स्वय मुनि बन गये। तप करते हुए मुनि यशोध ने शरीर त्यागा और मोक्ष प्राप्त किया।

अब गंधर्वश्री का हाल सुनो। राजा वैधव्य की पुत्री, गधर्वसेन की बहन तथा विन्ध्यश्री की आत्मजा मन्त्री राम और मन्त्रि-पत्नी चन्द्रलेखा की पुत्रवधू थी। वह मन्त्रिपुत्र जितशत्रु की भार्या तथा भीम की भाभी थी।

दुराचारिणी गन्धर्वश्री अपने देवर भीम मे आसक्त हो गई और लुक-छिपकर उसके साथ रमण करने लगी। एक दिन जितशत्रु ने अपने भाई भीम और पत्नी गन्धर्वश्री को कुत्सित विनोद करते देख लिया तो उसे स्त्री जाति से घृणा हो गई तथा ससार की

असारता उसे स्पष्ट दीखने लगी। उसके हृदय में ऐसा वैराग्य आया कि सब कुछ त्यागकर वह मुनि बन गया। मुनि [illegible] तप द्वारा अपने कर्मों का क्षय करने लगे। तपश्चरणपूर्वक [illegible] का त्यागकर जिनशत्रु मुनि का जीव ही चन्द्रमती की [illegible] रूप में उत्पन्न हुआ था। बाद में उसी यशोधर ने [illegible] चन्द्रमती माता की प्रेरणा से कृत्रिम कुक्कुट का वध किया [illegible]

इधर मंत्री राम ने जब अपने छोटे पुत्र भीम और [illegible] गंधर्वश्री के दुराचरण की बात सुनी तो उसका मन भी [illegible] उचट गया और उसने भी धर्म की शरण ली। [illegible] पत्नी चन्द्रलेखा ने भी पति का अनुसरण किया। इस प्रकार [illegible] राम तथा साध्वी चन्द्रलेखा ने प्राण त्यागकर विद्याधर [illegible] जन्म धारण किया।

बहन गंधर्वश्री के कुकर्म से क्षुब्ध होकर राजा [illegible] भी श्रमणी दीक्षा अंगीकार करली और अनशन [illegible] किया। मरणोपरान्त मुनि गंधर्वसेन ही मारिदत्त बना।

मुनि सुदत्त ने राजा मारिदत्त से कहा—

"राजन्! पूर्वभव में तुम्ही गंधर्वपुर के राजा [illegible] अब तुम आगे की कथा सुनो।"





मिथिलापुरी नामक एक अत्यन्त सुन्दर नगरी [illegible] मिथिला में जिनदत्त नाम के एक सेठ रहते थे। वे [illegible] और जिनेन्द्र भगवान के भक्त थे। दया-दान में वे [illegible]

सेठ जिनदत्त की एक गाय थी। गाय ने [illegible] समय पाकर बछड़ा पुष्ट और बड़ा हुआ। [illegible] एक मनिष्य द्वारा [illegible], तब वह जल में प्रविष्ट [illegible]

ाणान्त के समय सेठ जिनदत्त ने 'अरिहन्ते शरण' शब्द तीन बार ासके कान मे कहा।

इतना कह मुनि सुदत्त ने कहा—

"हे राजा मारिदत्त ! जिनदत्त सेठ के इसी बछडे का जीव ्म्हारी रानी रुक्मिणी के गर्भ मे तुम्हारा पुत्र हुआ है। तुम्हारे ाद वही यौधेय देश का राजा बनेगा। अब आगे सुनो।"

राम मन्त्री का भीम नामक जो पुत्र था और जिसने अपनी ाभी गधर्वश्री के साथ रमण किया था, दूसरे भव मे वह उज्ज- ियनी मे एक कुबडे के रूप मे जन्मा और राजा यशोधर के यहाँ ास बना। इसके साथ ही वह जो पापपुञ्ज गन्धर्वश्री थी, इस भव मे विमलवाहन राजा की पुत्री नयनावली बनी। विमल- ाहन राजा ने पापिनी नयनावली का विवाह उज्जयिनीनरेश ाशोधर के साथ कर दिया। इस प्रकार पूर्वभव की गन्धर्वश्री ाशोधर की पटरानी नयनावली बनी तथा अनने पति को अपने ाव-भावो मे अतिशय प्रेम करने वाली का अभिनय कर वास्तव ं उसने पूर्वभव के भीम कुबडे दास मे प्रेम किया।

मुनि सुदत्त ने कहा—

'राजन मारिदत्त ! नयनावली के दुश्चरित्र का वृत्तान्त तुम ुनि अभयरुचि के मुख से सुन ही चुके हो। अब आगे सुनो।

"मन्त्री राम ने यशोधर के पुत्र गुणधर का जन्म धारण किया और मन्त्री राम की पत्नी चन्द्रलेखा ने तुम्हारी बहन ुसुमावली का जन्म धारण किया। तुमने अपनी बहन कुसुमा- ली यशोधर के पुत्र गुणधर को ब्याह दी। इस तरह पूर्वभव के राम तथा चन्द्रलेखा इस भव मे भी गुणधर और कुसुमावली के रूप मे पति-पत्नी बने।"

इतना वृत्तान्त सुनने के बाद मारिदत्त ने मुनि सुदत्त से पूछा—

"महामुने ! चन्द्रमती, अर्थात् यशोधर राजा की माता का जीव श्वान, सर्प, ग्राह और बकरी का जन्म त्याग जब सिंधु देश मे भैसा बना तो उज्जयिनी मे बहती क्षिप्रा मे पानी पीते हुए उस महिष ने गुणधर के घोडे को मार दिया था। इन दोनो मे पूर्वभव का क्या वैर था, सो भी सुनाइए।"

इस पर मुनि सुदत्त ने आगे की कथा इस प्रकार कही।

राजा यशोध की एक पत्नी तो चन्द्रमती थी ही, दूसरी चन्द्रलक्ष्मी थी। चन्द्रमती और चन्द्रलक्ष्मी दोनो सौतो मे परस्पर ईर्ष्या थी। इसी क्रम मे चन्द्रलक्ष्मी का पूर्वभव सुनो। चन्द्रलक्ष्मी पूर्वभव मे एक पुरूष थी। उस पुरुष ने कुपात्रदान दिया था तथा तापस बनकर काया कष्ट उठाया और अपनी काया को क्षीण किया। वही तापस दूसरे भव मे चन्द्रमती की सौत अथवा राजा यशोधर की दूसरी रानी चन्द्रलक्ष्मी बनी।

वैरबन्ध और इसी तरह के सभी कर्मबन्ध का उदय एक ही जन्म मे समाप्त नही हो जाता—जन्म-जन्मान्तर तक चलता है। आगे चलकर चन्द्रलक्ष्मी अश्व बनी और अश्व बनकर वह गुणधर की अश्वशाला मे आई। इधर चन्द्रमती का जीव भैसा बना। पूर्व वैरबन्ध के कारण पानी पीते हुए गुणधर के घोडे को चन्द्रमती के जीव वाले भैसे ने मार दिया।

इस तरह पूर्वभव के वैरबन्ध की रोषाग्नि अगले भवो मे भी साथ चलती है और अवसर देखकर बदला लेती है। इस प्रकार चन्द्रलक्ष्मी और फिर घोडे का जीव मिथिलापुरी के सेठ जिनदत्त की गाय का बछडा हुआ। मरते समय उसने "अरिहंत

शरण" शब्द सेठ जिनदत्त के मुख से सुना। वही अश्व का जीव मारिदत्त तुम्हारा पुत्र बना है।

बहुत समय पहले इसी राजपुर नगर मे तुम्हारा पिता चित्रागद नामक महाप्रतापी राजा राज्य करता था। उसकी रानी अर्थात तुम्हारी माता थी चित्रसेना। वह राजा देवी का उपासक तथा भक्त था। बाद मे उसी ने देवी की आराधना के निमित्त यह राज्य तुम्हे सौप दिया और वह स्वय तीर्थाटन करने लगा।

मारिदत्त! तुम्हे जो यह राज्य मिला है, देवीभक्त अपने पिता राजा चित्रागद द्वारा मिला है, यह तो तुम्हे मालूम ही है। अब अपने पिता चित्रागद का आगे का वृत्तान्त सुनो।

तीर्थो का भ्रमण करते हुए चित्रागद राजपुर मे लौट आया यहाँ उसने देवी का मठ बनवाया। देवी की आराधना करते हुए वह यह कामना करता था कि मुझे देव-ऋद्धि प्राप्त हो। इस तरह सकाम मृत्यु का वरण करके देवी-उपासक चित्रागद मर गया। तप और मरण-पूर्व निदान के कारण ही चित्रागद का जीव लिगच्छेद करके चण्डमारी देवी बनी। उसे देव-ऋद्धि प्राप्त हो ही गई। तप से क्या नही मिल जाता? पर कुछ मूर्ख ऐश्वर्य और ऋद्धियाँ प्राप्त करते है तथा ज्ञानी शिवपुर का अमर सुख प्राप्त करते है।

इधर तुम्हारी जो माता चित्रसेना थी, वह मरकर कौला-चार्य भैरवानन्द बनी। लिगच्छेद करके वह स्त्री से पुरुष बनी। अब इस भैरवानन्द ने मिथ्यात्व को त्याग निर्ग्रन्थधर्म का अनुसरण किया है। अत आगे चलकर यह कल्पवासी देव होगा।

मुनि सुदत्त बोले—

"हे राजन मारिदत्त! मैं पूर्वभव कौन था, सो भी सुन लो।

यह संसार सच ही एक जाल है। कर्म-विपाक कैसे-कैसे जोड-तोड भिड़ाता है।"

इतना कह मुनि सुदत्त आगे कहने लगे।

उज्जयिनी नगरी मे यशोधर राजा के पितामह, अर्थात् यशोध राजा के पिता यशबन्धुर थे। उन्होने अनेक मठ और देवालय बनवाये। वे तापसो तथा देवी के उपासको को भोजन कराते थे। वे दानी थे, पर उनके हृदय मे मिथ्यात्व भाव था। इसीलिए उन्होने आखेट भी खूब किया।

जब यशबन्धुर राजा मरे तो मरने के बाद कलिंग देश के राजा भगदत्त के पुत्र सुदत्त बने। भगदत्त के बाद सुदत्त कलिंग का राजा बना। सुदत्त नाम का कलिंगराज मैं ही था। मैं जब राजा बना तो मेरे सामने एक चोर लाया गया। उसे प्राणदण्ड देने का विधान था। मेरी सभा के न्यायाधिकारियो तथा ब्राह्मणों ने कहा कि यदि मैं इस चोर को मुक्त करता हूँ तो भी मुझे पाप लगेगा और यदि इसे प्राणदण्ड देता हूँ, तो भी मुझे पाप लगेगा।

यह सुनते ही मै विरक्त हो गया और सोचने लगा कि ऐसी राजलक्ष्मी को धिक्कार है, जिसके योग से पाप लगता है। अतः चोर को तो मैंने छोड दिया और धर्म की शरण लेकर श्रमण बन गया।

राजन् मारिदत्त! तुम्हारे नगर राजपुर मे भी मैं पाँच बार आ चुका हूँ। इस प्रकार यहाँ मैं तृण-स्वर्ण और शत्रु-मित्र को समभाव से देखते हुए तप कर रहा हूँ।

मारिदत्त! अभी तो कुछ सुनने को शेष है, सो तुम चित्त लगाकर आगे की कथा सुनो।

यशोधर के पिता राजा यशोध का एक मन्त्री था, उसका नाम गुणसिन्धु था। गुणसिन्धु बडा ही ज्ञानी था। समय रहते उसने अपने पुत्र नागदत्त को मन्त्री बनाया और स्वय घर पर रहकर धर्माराधन करने लगा। धर्माराधन करते हुए गुणसिन्धु ने प्राण त्यागे और उज्जयिनी मे वह श्रीपति नामक वणिक् का पुत्र बना। श्रीपति ने गुणसिन्धु के जीव वाले अपने पुत्र का नाम गोवर्धन रखा।

गोवर्धन पूर्वसस्कारो के कारण उत्तम श्रावक बना। वह धर्मनिष्ठ, श्रमणोपासक और सम्यक्त्वी था। जब मैं एकाकी विहार करते हुए उज्जयिनी के वन मे पहुँचा और वहाँ एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुआ तो उज्जयिनी का राजा गुणधर शिकारी कुत्तो तथा शिकारी साथियो सहित उसी वन मे पहुँचा, जहाँ मैं था। उसने मुझे मारने के विचार से मेरे ऊपर शिकारी कुत्ते छोड दिये। फिर कुत्ते जब अहिंसा से प्रभावित हुए तो गुणधर राजा स्वय ही खड्ग लेकर मेरे दौडे। तब श्रावक गोवर्धन ने गुणधर को उद्बोधन दिया था।

मारिदत्त ! जब गुणधर राजा, राजपुत्र अभयरुचि, राजकुमारी अभयमती तथा तुम्हारी सहोदरा कुसुमावली दीक्षित हुए तब गोवर्धन श्रावक ने भी दीक्षा ले ली। ये भी मेरे साथ विहार करते है। ये देखो, मुनि गोवर्धन मेरे पास बैठे है।

इस प्रकार यौधेयनरेश मारिदत्त ने महाज्ञानी मुनि सुदत्त के मुख से अपने साथ अन्य सभी का पूर्वभव सुना तो उसका मन विषाद और आनन्द से भर गया। उसने मुनिश्री से कहा—

"हे दयासागर ! सरस्वती और बृहस्पति की वाणी मे भी

इतनी सामर्थ्य नही है कि आपकी विधिवत् वन्दना कर सकें। तब मैं पामर कैसे कर सकता हूँ।

"भगवन् ! मैंने जगत का नग्न रूप देख लिया है। अब मुझे अपनी शरण मे लेकर मेरा उद्धार कीजिए। मैं दीक्षा लेने के लिए तत्परहूँ'

तब मुनि सुदत्त ने मारिदत्त को भागवती दीक्षा की अनुमति दी। मारिदत्त के साथ अन्य पैंतीस राजा भी प्रतिबोधित हुए।

मारिदत्त आदि ने श्रामणी दीक्षा अंगीकार करली और भैरवानन्द ने भव्य संन्यास धारण किया तथा बाईस दिन तक सभी आहारो का त्याग करके शरीर त्यागा और तीसरे स्वर्ग मे देव बना।

अन्त मे मुनि अभयरुचि तथा साध्वी अभयमती ने समाधिपूर्वक प्राण त्यागे और दोनो ईशान देवलोक मे देव बने। सैंकड़ो देव उनकी सेवा करने लगे। तप और सम्यक्त्व के प्रभाव से अभयमती ने लिंगच्छेद करके देवभव पाया।

मुनि सुदत्त भी देह त्यागकर सप्तम स्वर्ग मे पहुँचे। इसी तरह मुनि गुणधर, मुनि गोवर्धन, साध्वी कुसुमावली सब तप के प्रभाव से स्वर्ग मे देव बने।



परिशिष्ट

यशोधरचरित मे कथान्तर, प्रक्षेप तथा नामभेद मिलते हैं। प्रस्तुत कथा के आधार सोमदेव कृत 'यशस्तिलक', पुष्पदन्तकृत 'जसहर चरिउ' तथा हरिषेण कृत 'वृहत्कथाकोश' हैं।

प्रमुख अन्तर तो नामो का है। यशोधर के पुत्र गुणधर का नाम यशोमति भी दिया गया है। उसकी रानी का नाम कही जयावली और कही कुसुमावली है। इसी तरह यशोधर की दुराचारिणी रानी नयनावली का नाम कही अमृतमती भी है। कलिंग के राजा अर्थात सुदत्त के पिता का नाम कही भगदत्त है तो कहीं अमरदत्त है। इस तरह यह नगण्य-सा नाम-भेद है।

अभयरुचि ने अपने पिता गुणधर के साथ मुनि-दीक्षा नही ली थी। बल्कि वह यती बना था। यती (क्षुल्लक) श्रावक और मुनि के बीच की अवस्था है। बाद मे जब यतीरूप अभयरुचि मारिदत्त के नगर राजपुर मे पहुँचा और उसने मारिदत्त को यशोधर से लेकर अभयरुचि तक अपने आठो भव सुनाये तो उसे लेकर वह मुनि सुदत्त के पास पहुँचा। जब मारिदत्त ने अपना पूर्वभव सुनने के बाद श्रामणी दीक्षा ली तभी अभयरुचि और अभयमती ने भी यती वेश त्यागा मुनिदीक्षा ली थी। किन्तु हमने प्रारम्भ से उन्हे मुनि-साध्वी दिखाया है—बालमुनि और बालसाध्वी, क्योकि कुछ ग्रथो मे ऐसा भी उल्लेख है।

राजपुर को कही-कही मगध की राजधानी बताया है। लेकिन अधिक प्रामाणिक यह है कि वह यौधेय देश की राजधानी था। पजाब देश का प्राचीन नाम ही यौधेय देश था।

कुछ ग्रन्थो मे ऐसा उल्लेख है कि यशोधर की दुःशीला रानी नयनावली ने अपने पति के साथ-साथ चन्द्रमती को भी विष दिया था। कुछ मे ऐसा है कि यशोधर को ही विष दिया और उसके मरने पर शोक की अति से चन्द्रमती ने प्राण त्यागे थे।

इसी तरह का यशोधर के वैराग्य के विषय मे भी एक नगण्य-सा अन्तर है। यशोधर को यो ही अकस्मात भोगो से अरुचि हो गई और उसने दीक्षा लेने की ठान ली। बाद मे उसने अपनी रानी नयनावली को कुबडे के साथ रमण करते हुए देखा तो उसकी वैराग्य-भावना पुष्ट हो गई।

कही ऐसा उल्लेख है कि पहले यशोधर ने अपनी रानी का दुराचरण देखा, तब उसे भोगो से अरुचि हुई और उसने दीक्षा लेने का निर्णय कर लिया। दोनो ही बाते सम्भव है। ये अन्तर [illegible] है। हमने दूसरे कारण को लिया है।

कथानक की ऐतिहासिकता—मारिदत्त और भैरवानन्द की [illegible] से नरबलि सहित पशु-बलि की व्यवस्था की गई, यह [illegible] नही है। आज भी जब-तब नर-बलि की घटनाएँ सुनने [illegible]खने मे आ जाती है। कोई पुत्र के लिए दूसरे के पुत्र को बलि [illegible] है तो कोई गाय-बछडो के बाडे मे चुपचाप आग लगा देता है। कोई गडे धन को पाने के लिए नरबलि देता है। नर-बलि के सलाहकार पुरोहित आज भी है। हिंसा से सुख-समृद्धि की कामना करने वाली चन्द्रमती जैसी स्त्रियाँ और मारिदत्त जैसे पुरुष आज भी क्या नही है? बकरा-बकरी, शूकर, कुक्कुट आदि का वध तो आज भी सरेआम होता है।

दरअसल प्राचीन युग से ही हर मानव बिना दोष मिटाये ही दुःख मिटाना चाहता है। जैनधर्म का प्रयास यही रहा है कि

पहले दु ख का कारण (दोप अथवा पाप) देखो, समझो। ऐसे प्रयास आज भी हो रहे हैं।

जैन मुनियो का विहार पजाव मे अधिक हुआ, यह तथ्य भी ऐतिहासिक है। पजाव देश का नाम यौधेय था यह तथ्य भी प्रामाणिक है क्योकि चौथी शताब्दी की जिन मुद्रा पर 'यौधेय गणस्य जय.' शब्द पाया गया है।

मनुष्य का हृदय तो परिवर्तनशील है। यही कारण है कि मारिदत्त क्या से क्या हो गया। प्रस्तुत कथानक की विशेपता हिंसा पर अहिंसा की विजय मानव मनोवृत्ति का सत्य है। अपनी इसी विशेपता के कारण इस कथानक का लगभग एक हजार वर्ष से जैन जगत मे काफी आदर रहा। सस्कृत के साथ ही प्राकृत, अपभ्र श, कन्नड, तमिल, गुजराती और हिन्दी मे इसकी प्रतियाँ है। मूल कथा सर्वत्र एक ही है। जो भी अन्तर है, वह नगण्य है और यह कवि की कल्पना भेद के कारण है—जैसे कवि सोमदेव ने भैरवानन्द की जगह वीर वैभव नाम दिया है। इसमे यशोधर और चन्द्रमती माँ-वेटे के केवल तीन जन्म ही चित्रित किये है—मयूर-श्वान, मत्स्य और कुक्कुट। यहाँ चन्द्र-मती और मारिदत्त सगे भाई-वहिन है।

छोटे-छोटे अनेक कथान्तरो के होते हुए भी यह कथा एक सचाई—समाज की सचाई और मानव-मन की सचाई तथा धर्मा-धर्म के अन्तर के सत्य को हमारे सामने रखती है।

युवाचार्य श्री की मौलिक और अभिनव कृति

जीओ तो ऐसे जीओ

इसमें आपको मिलेगी—

- ☐ सुखी जीवन जीने की कला
- ☐ पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक सुख के उपाय
- ☐ सफल और उन्नतिशील जीवन जीने के गुण
- ☐ लोकप्रिय होने के नुस्खे
- ☐ वाक्पटुता और वार्तालाप मे चतुराई
- ☐ नवीन विचार और नवीन कल्पनाएँ
- ☐ और यह सब—धर्मानुमोदित रूप मे—धर्मपूर्ण, सफल व उन्नतिशील जीवन जीने मे सहायक

मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन

ब्यावर (राजस्थान)